भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

INDIAN INSTITUTE OF PULSES RESEARCH
भादअस
ISO 9001-2008

फार्मर फर्स्ट डायरी

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर – 208 024
दूरभाषः +91–512–2580986
ईपीबीएक्सः +91–512–2580994, 2580995
फैक्सः 91–512–2580992
ईमेलः diriipr.icar@gmail.com
वेबसाइटः https://iipr.icar.gov.in

परियोजना में कार्यरत वैज्ञानिक/कर्मचारी

- डा. नरेन्द्र प्रताप सिंह, निदेशक, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. राजेश कुमार, प्रधान अन्वेषक एवं प्रधान वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष (प्र.) सामाजिक विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. सी.एस. प्रहराज, प्रधान वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष (प्र.), फसल उत्पादन विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. कृष्ण कुमार, विभागाध्यक्ष, फसल सुरक्षा विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. पुरूषोत्तम सह-अन्वेषक एवं वरिष्ठ वैज्ञानिक, सामाजिक विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. उम्मेद सिंह, सह-अन्वेषक एवं वरिष्ठ वैज्ञानिक, फसल उत्पादन विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. श्रीपद भट्ट, सह-अन्वेषक एवं वैज्ञानिक, सामाजिक विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. सुभाष चन्द्रा, सह-अन्वेषक एवं सह-प्राध्यापक, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर
- डा. एम.पी.एस. यादव, सह-अन्वेषक एवं सह-प्राध्यापक, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर
- डा. देवराज, प्रधान वैज्ञानिक, सामाजिक विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. आर.के. मिश्रा, वरिष्ठ वैज्ञानिक, फसल सुरक्षा विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. ए.के. परिहार, वैज्ञानिक, फसल सुधार विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. सुजयानन्द, वैज्ञानिक, फसल सुरक्षा विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर

- ई. मनमोहन देव, वैज्ञानिक, एफ.एम.पी., भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- डा. हेमन्त कुमार, वैज्ञानिक, सामाजिक विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- श्री के. रवि कुमार, वैज्ञानिक, सामाजिक विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- श्री राधाकृष्ण, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी, भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
- श्री चन्द्रमणि त्रिपाठी, वरिष्ठ शोध सहायक, श्री मोहम्मद इकबाल, क्षेत्र सहायक एवं श्री राम सरन, क्षेत्र सहायक

सम्पादन

जुलाई, 2018

डा. राजेश कुमार श्रीवास्तव

अस्वीकरण

फार्मर फर्स्ट परियोजना से जुड़े समस्त वैज्ञानिकों द्वारा प्रयास किया गया है कि इस डायरी में प्रकाशित सभी सूचनाएं सत्य हैं किन्तु भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर डायरी में प्रकाशित सभी सूचनाओं/तकनीकों की प्रत्येक दशा में सफल होने की जिम्मेदारी नहीं लेता है। इस डायरी के आधार पर किसी भी प्रकार का व्यावसायिक निवेश का निर्णय ना लिया जाये।

फार्मर फर्स्ट परियोजना एवं इसका उद्देश्य

फार्मर फर्स्ट परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा देश के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में चलायी जा रही है। इसका उद्देश्य किसानों को तकनीकी जानकारी प्रदान करना तथा कृषि की नयी एवं विविध तकनीकों को किसानों तक ले जाना है जिससे उनकी आजीविका में सुधार हो सके। यह परियोजना 2016-17 में फतेहपुर जनपद के देवमई खण्ड के तीन गाँवों-करचलपुर, खरौली एवं मिराई में प्रारम्भ की गई है। इस परियोजना के अन्तर्गत किसानों को धान्य फसल, दलहन, तिलहन, चारा, उद्यान, शाकभाजी, आधारित प्रदर्शन लगाकर किसानों की समस्याओं का निदान किया जा रहा है। इसी प्रकार कुक्कुट पालन एवं बकरी पालन द्वारा भूमिहीन एवं गरीब महिला कृषकों एवं युवाओं के रोजगार एवं आमदनी बढ़ाने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। इसके साथ प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करते हुए कृषि के क्षेत्र में अधिक से अधिक उत्पादन एवं आय बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। इस परियोजना के तहत एकीकृत मॉडल का विकास किया जा रहा है। इस परियोजना के तहत किसानों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है तथा किसानों के उत्पादन का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए किसान सेवा समिति बना कर स्थानीय किसान उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.) से जोड़ा जा रहा है एवं दलहन प्रसंस्करण के लिए दाल मिल की व्यवस्था की जा रही है। इसके अलावा, बेरोजगार युवा लोगों को मशरूम एवं वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि एवं उत्पादन करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है तथा समय-समय पर कृषक-वैज्ञानिक परिचर्चा करके किसानों को संस्थान की नई तकनीकों के बारे में जानकारी दी जा रही है। किसानों को आधुनिक सूचना संचार तकनीकी से जोड़कर आधुनिक कृषि तकनीकियों के बारे में जानकारी दी जा रही है।

अरहर उत्पादन की उन्नत खेती

अरहर भारत की प्रमुख दलहनी फसल है। भारत सम्पूर्ण विश्व में अरहर का सबसे बड़ा उत्पादक देश हैं। विश्व का लगभग 80 प्रतिशत उत्पादन भारत में ही होता है। इसकी खेती देश के विभिन्न भागों में तीन अवस्थाओं, अगेती, मध्यम एवं देर से पकने वाली मे की जाती है। इसका प्रयोग दाल के रूप में किया जाता है। इसकी मूसला जड़ें सीमित नमी में भी फसल की बढ़वार को बनाये रखती है। सहजीवी विधि के द्वारा अरहर, नत्रजन की अवश्यकता पूरी करने के साथ-साथ लगभग 40 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से नत्रजन भूमि में जमा करती हैं। वर्तमान में दिन-प्रतिदिन जोत की कमी के कारण अगेती अरहर का प्रचलन दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। क्योंकि अगेती अरहर की फसल के बाद किसान गेहूँ एवं आलू की फसल भी ले सकते हैं। फलस्वरूप अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करने के साथ-साथ आमदनी भी दोगुनी कर सकते हैं।

अरहर में पोषक तत्वः- अरहर में 20-21 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट (लगभग 60 प्रतिशत) के अलावा, इसमें वसा, कैल्शियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, लौह तथा विटामिन बी.1 व बी.2 भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

भूमि की तैयारी और बुआई की विधिः-अरहर की खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली उच्च उर्वरायुक्त दोमट व बलुई दोमट भूमि उपयुक्त होती है। खेत में पानी का ठहराव नहीं होना चाहिए तथा भूमि लवणीय और क्षारीय नहीं होनी चाहिए। खेत की पहली बुआई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद, 2-3 जुताइयाँ देशी हल से करके पाटा लगाना चाहिये।

बुवाई हल के पीछे कूँड़ से करनी चाहिये। अरहर में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60-70 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10-15 से.मी. होनी चाहिए। अधिक वर्षा एवं भारी मृदा वाले क्षेत्रों में बुआई 45-60 से.मी. की दूरी पर बनी मेड़ों पर करने से पैदावार में वृद्धि होती है तथा फाइटोफ्थोरा बीमारी का प्रकोप भी कम होता है।

दूरी

पंक्ति से पंक्ति

45-60 से.मी. (शीघ्र पकने वाली) तथा

60-75 से.मी. (मध्यम व देर से पकने वाली)

पौध से पौध

10-15 से.मी. (शीघ्र पकने वाली)

15-20 से.मी. (मध्यम व देर से पकने वाली)

बुवाई का समय व बीज दरः- अरहर की बुवाई जुलाई तक कर देनी चाहिये। उपयुक्त दशाओं में अरहर की फसल के लिये 12-15 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिये।

बीज शोधनः- मृदाजनित रोगों (उगठा व जड़ गलन) से बचने के लिए 2.0 ग्राम थीरम + 1.0 ग्राम कार्बेन्डाजिम अथवा 3 ग्राम थीरम प्रति कि.ग्रा. की दर से बीज को शोधित कर लेना चाहिये। 2-3 दिन बाद अरहर को राइजोबियम कल्चर के एक पैकेट से 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। 100 ग्रा. गुड़ या चीनी को 1.5 ली. पानी में घोलकर उबाल लें। घोल के ठंडा होने पर उसमें राइजोबियम कल्चर मिला दें। इस कल्चर में 10 कि.ग्रा. बीज डाल कर अच्छी प्रकार मिला लें ताकि प्रत्येक बीज पर कल्चर का लेप चिपक जायें। उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर, दूसरे दिन बोया जा सकता है। उपचारित बीज को कभी भी धूप में न सुखायें, व बीज उपचार दोपहर के बाद ही करें।

पोषक प्रबन्धनः- अरहर की फसल में 100 कि.ग्रा. डी.ए.पी तथा 100 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करना चाहिए। पोटैशियम के लिए 33 कि.ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश व जिन क्षेत्र में जस्ते की कमी है, वहाँ 15-20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना लाभकारी होता है।

सिंचाई प्रबंधनः- चूँकि फसल असिंचित दशा में बोई जाती है अतः लम्बे समय तक वर्षा न होने पर एवं पूर्व पुष्पीकरण अवस्था तथा दाना बनते समय फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। अधिक अरहर उत्पादन के लिए खेत में उचित जलनिकास का होना आवश्यक है अतः निचले एवं अधो जल निकास की समस्या वाले क्षेत्रों में मेड़ों पर बुआई करना उत्तम रहता है।

खरपतवार प्रबंधनः- चूंकि खरीफ (वर्षा) मौसम में खरपतवार की समस्या अधिक होती है। अतः पहली निकाई बुवाई के एक महीने के अंदर तथा दूसरी निकाई

45-60 दिन में करनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई के तुरंत बाद 3.30 लीटर पेण्डीमिथालिन (स्टांप 30 ई.सी.) को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिये।

अरहर की उन्नतशील प्रजातियाँ

शीघ्र पकने वाली प्रजातियाँ	उपास 120, पूसा 33, जाग्रति (आईसीपीएल 151), आजाद (के 91–25), प्रभात, पूसा 992
मध्यम समय में पकने वाली प्रजातियाँ	जवाहर अरहर 4, आईसीपीएल 87119 (आशा), बीएसीएमआर 583, टाइप 21
देर से पकने वाली प्रजातियाँ	आई.पी.ए. 203, आई.पी.एच. 09–05, नरेन्द्र अरहर–1, नरेन्द्र अरहर–2, पूसा–9, बहार, अमर और आजाद
संकर	पीपीएच–4, आईसीपीएच 8

प्रमुख रोग

उकठा

यह अरहर के बहुत अधिक नुकसान पहुचाने वाली बीमारी है। इस रोग का प्रकोप देश के सभी अरहर उत्पादक क्षेत्रों में होता है। यह रोग एक फफूँद ***'फ्यूजेरियम ऊडम'*** से होता है। यह मृदाजनित रोग है जिसका संक्रमण पौधों की जड़ों से होता हुआ तने में ऊपर की ओर बढ़ता है। अरहर में इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण सामान्यतः सितम्बर-अक्टूबर के महीने में दिखाई देते हैं। परन्तु इस अवस्था में रोग का प्रकोप अधिक नहीं होता है। इस रोग का अधिक प्रकोप फसल में फूल एवं फली लगने वाली अवस्था में होता है। संक्रमित पौधा मुरझा जाता है तथा पौधे की पत्तियाँ धीरे-धीरे सूखकर गिरने लगती हैं। रोगग्रस्त पौधा दूर से ही खेतों में दिखाई पड़ जाता है। रोग की उग्र अवस्था में पौधे के तने में नीचे से ऊपर की

तरफ भूरी धारी सी बन जाती है। रोगकारक फफूंद मुख्यतः पौधे की जड़ों में प्रवेश कर दारू ऊतक *(जाइलम)* को संक्रमित कर पौधे की द्वितीयक एवं तृतीयक जड़ों से होता हुआ तने में ऊपर की तरफ बढ़ता है। फफूंदी के तन्तु दारू ऊतक की वाहिनी को अवरूद्ध कर देता है जिसके फलस्वरूप पौधों में पानी का संचारण नहीं हो पाता है। रोगग्रस्त पौधे को उखाड़कर उनकी जड़ें एवं तने के बीच के भाग को फाड़कर निरीक्षण करने पर उनकी जड़ों एवं तनों में भूरी एवं काली रंग की धारियां दिखाई देती हैं।

प्रबन्धन

- खेत में अरहर के पुराने अवशेषों को नहीं छोड़ना चाहिए।
- मई-जून के महीनों में जिस खेत में अरहर की बुवाई करनी हो उसकी दो-तीन बार गहरी जुताई करें।
- अरहर की ज्वार के साथ अन्तः फसल करना चाहिए।
- जिस खेत में बुवाई करनी हो उसमें जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- उर्वरकों का संस्तुत मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

(क) उकठा रोग से प्रभावित अरहर के पौधे (ख) रोग से प्रभावित अरहर की फसल

- बीज की बुवाई से पहले बीज को कार्बेन्डाजिम (2.0 ग्राम) अथवा ट्राइकोडर्मा नामक जैव नियंत्रक (10 ग्राम) से उपचारित करना चाहिए।
- इस रोग से बचाव हेतु सबसे सस्ता एवं सरल उपाय है कि क्षेत्र के लिए संस्तुत उकठा अवरोधी प्रजातियों का ही प्रयोग करें।

फाइटोफ्थोरा अंगमारी

यह भी अरहर में लगने वाली एक महत्वपूर्ण मृदाजनित बीमारी है। इस रोग का प्रकोप उत्तर, मध्य व दक्षिण भारत में सामान्यतयाः अधिक देखा गया है। इसका प्रकोप फसल की प्रारम्भिक अवस्था (बुवाई से 50-60 दिनों तक) में अधिक देखा जाता है। इस रोग का प्रकोप ***'फाइटोफ्थोरा डेशलेरी'*** उप प्रजाति ***'कैजानी'*** नामक मृदाजनित कवक से फैलता है। इसका प्रकोप वर्षा ऋतु में ज्यादा होता है। यह देखा गया है कि खेत के निचले भाग में जहाँ जल भराव होता है अथवा जल निकास का उचित प्रबन्ध नहीं होता है, इस रोग का संक्रमण अधिक होता है। बीमारी के प्रथम लक्षण सामान्यतयाः पौधे के तने के निचले भाग पर भूरा एवं काले रंग के धब्बे के रूप में प्रकट होते हैं, जो कि धीरे-धीरे पौधे के ऊपरी भाग पर भी दिखाई देते हैं। कभी-कभी संक्रमित पौधे के रोगग्रसित भाग पर गाँठ सी बन जाती

(क) फाइटोफ्थोरा अंगमारी रोग से ग्रसित पौधा (ख) ग्रसित पौधे में बने काले रंग का धब्बा

है एवं पौधा टूटकर गिर जाता है। संक्रमण के लक्षण पत्तियों पर जलसिक्त धब्बों के रूप में प्रकट होते है जो कि धीरे-धीरे पौधे के तनों पर भी देखे जाते हैं।

प्रबन्धन

- इस रोग का प्रकोप फसल की प्रारम्भिक अवस्था में तथा खेत में जल भराव की स्थिति में अधिक होता है। अतः बुवाई के 50-60 दिनों तक खेत में जल भराव की स्थिति न हो इसका ध्यान रखना चाहिए।
- बुवाई के लिए ऐसे खेतों का चयन करना चाहिए जहाँ पानी निकासी का उचित प्रबन्ध हो।
- अरहर की बुवाई मेड़ों पर ही करनी चाहिए।
- क्षेत्र के लिए संस्तुत रोगरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए।
- बुवाई से पहले बीज को मेटालेक्सिल (2.0 ग्राम) या ट्राइकोडर्मा (10 ग्राम) प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

आल्टरनेरिया झुलसा

आल्टरनेरिया झुलसा रोग फसल को अधिक हानि पहुंचाने की क्षमता रखता है परन्तु इस रोग की व्यापकता अधिक नहीं है। इस रोग का संक्रमण विशेष वातावरणीय स्थिति में ही देखा जाता है। संवंतः यह रोग सभी क्षेत्रों में देखा जाता है परन्तु इसकी व्यापकता आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। यह रोग कवक ***'आल्टरनेरिया* प्रजाति'** द्वारा होता है। रोग की प्रारंभिक अवस्था में पौधों की पत्तियों में भूरा एवं काले रंग के छल्लेदार धब्बे बनते दिखाई देते हैं जो कि धीरे-धीरे पत्ती के समूचे हिस्से में फैल जाते हैं जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ सूख कर गिर जाती है। इस रोग का प्रकोप सामान्यतयाः गर्म एवं आर्द्र मौसम में अधिक होता है। यह एक बीजजनित रोग है। रोग की उग्र अवस्था में इसके लक्षण पौधों के अन्य भागों जैसे तने एवं शाखाओं पर भी दिखाई देते हैं।

प्रबन्धन

- फसल की समय से बुवाई करनी चाहिए।
- स्वस्थ बीज का चयन करना चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए।
- फसल में रोग का लक्षण दिखाई देने पर मेंकोजेब (डाईथेन एम-45) का (2.5 ग्राम/ली. पानी) 10-15 दिन के अन्तराल पर 1-2 बार छिड़काव करना चाहिए।

बाँझ चितेरी रोग

अरहर को हानि पहुंचाने वाले रोगों में बाँझ चितेरी (*स्टेरिलिटी मोजेक*) आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यह रोग एक विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है जिसे **'अरहर बंध्यता चितेरी विषाणु** (*स्टेरिलिटी मोजेक वायरस*)' के नाम से जाना जाता है और इसका संचारण *'एसेरिया केजानी'* नामक सूक्ष्म कीट द्वारा होता है।

लक्षण

इस रोग का प्रमुख लक्षण यह है कि पौधा बौना, झुरझुरा एवं हल्के रंग (धानी) का होता है। पत्तियों का आकार सामान्य से काफी छोटा एवं पतला हो जाता है एवं उनपर अनियमित आकार की हल्की हरी एवं गहरी चित्तियां पड़ जाती हैं। रोगरोधी पौधों में शाखाओं की संख्या स्वस्थ पौधों की तुलना में अधिक हो जाती हैं तथा रोगग्रसित पौधे अन्य पौधों की अपेक्षा लम्बाई में छोटे रह जाते हैं जिससे यह झाड़ीनुमा दिखने लगता है।

रोगग्रस्त पौधों में प्रजनन अंगों का विकास रूक जाता है जिससे फूल एवं फलियां नहीं लगती है इसीलिये इसे 'बांझ रोग' भी कहते हैं। पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में (जमाव से 45 दिन के अन्दर) रोग का प्रकोप होने से सम्पूर्ण पौधा बांझ हो जाता है और लगभग 95 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। देरी से ग्रसित होने पर (54 दिनों के बाद) पौधा केवल आंशिक रूप से बांझ होता है और नुकसान कम होता है। यह अवस्था आंशिक बांध्यता कहलाती है। फसल पकने पर स्वस्थ पौधे

परिपक्व होकर सूखने लगते हैं जबकि पौधे लम्बे समय तक हरे ही दिखाई पड़ते है।

यह रोग एक विषाणु द्वारा होता है जिसे अरहर बंध्यता मोजेक विषाणु का नाम दिया गया है। इसका संचारण एसेरिया केजानी नामक सूक्ष्म कीट द्वारा होता है। रोगवाहक माइट खेत में एक पौधे से दूसरे पौधे तक एवं एक खेत से दूसरे खेत तक रोग फैलाता है। यह स्वयं उड़ने में सक्षम नहीं है। अतः वायु के प्रवाह या संस्पर्श द्वारा ही एक पौधे से दूसरे पौधे एवं एक खेत से दूसरे खेत तक पहुंचता है। वायु प्रवाह में यह एक कि.मी. से अधिक दूरी तक पाया गया है। 20 माइट प्रति पौधा 100 प्रतिशत रोग संचारण में सहायक होते हैं। माइट का जीवन चक्र 15 दिनों में पूरा हो जाता है। जिसमें अण्डे, निम्फ एवं परिपक्व अवस्था होती है।

प्रबन्धन

- संक्रमित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए क्योंकि रोग का संचारण करने वाली माइट इन्हीं पौधों पर पनपती है।
- बीज को बुवाई से पहले इमिडॉक्लोरोप्रिड नामक कीटनाशी से उपचारित करना चाहिए।
- बीमारी के प्रथम लक्षण दिखाई पड़ने पर कीटनाशी जैसे मेटासिस्टॉक्स (01 प्रतिशत) का 10-15 दिन के अन्तराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- बांझ रोगरोधी अरहर की प्रजातियाँ उपलब्ध हैं अतः क्षेत्र के लिये संस्तुत बांझ रोगरोधी प्रजातियों को ही उगाएं।

प्रमुख कीट

फली भेदक *(हेलिकोवर्पा आर्मीगेरा)*

अरहर का यह प्रमुख कीट है जिसे ***हेलिकोवर्पा आर्मीगेरा*** कहते है। इस कीट की मादा पतंगा अपने अंडे मुख्यतः अरहर के पुष्पों, कलियों, कोमल फलियों पर देती है। रात्रि में दिए गए गोल अंडों से 2-5 दिन में गिडारें निकलकर अगले 4-5 दिनों तक फलियों के ऊपरी भाग को खुरचकर खाती हैं। तत्पश्चात गिडारें फलियों में गोलाकार छिद्र बनाकार अपना अग्रभाग छोड़कर विकसित हो रहे दानों को खाना शुरू कर देती हैं। अल्पकालिक अरहर को ज्यादा क्षति पहुँचाती है।

प्रबन्धन

- गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई करें।
- खेत में फेरोमोन ट्रेप लगाएं (5 प्रति हे.)।
- 1.0 से 1.5 किग्रा./हे. *बेसिलस थूरिंजिएंसिस कुर्सटाकी* का संरक्षण प्रयोग करने पर तीसरे इन्स्टार डिम्ब मर जाता है।
- जैव नियंत्रक कारक जैसे *क्राइसोपर्ला जस्ट्रोवी अरेबिका, केम्पोलेटिस क्लोरिडी, यूसेलाटोनिया ब्रयानी* एवं *कार्सेलिया इलोटा* का संवर्धी निर्गमन।
- बेन्जोएट 5 एस.जी. (0.2 ग्रा. प्रति ली.) या *प्रोफेनोफास* 50 ई.सी. (2 मि. ली./ली.) या *राइनाक्सीपाइर* 20 एस.सी. (0.15 मि.ली./ली.) का छिड़काव।
- एच.ए. एन.पी.वी. (1 मि.ली./ली.) या नीम के बीज का तेल 5 प्रतिशत (50 ग्रा./ली.) या नीम का जेल 3000 पी.पी.एम. (20 मि.ली./ली.) का छिड़काव करें।

फली मक्खी *(मेलानाग्रोमाइजा आब्टयूसा)*

यह उत्तरी भारत में अरहर को ज्यादा क्षति पहुँचाती है। अण्डों से निकलने

फली मक्खी द्वारा क्षतिग्रस्त अरहर के दाने

के बाद गिडारें विकसित दानों की बाह्य पर्त को कुछ समय तक खाती हैं। तत्पश्चात् दानों को छेदकर प्रवेश कर जाती हैं एवं भीतर ही भीतर दानों को खा जाती हैं। पूर्ण विकसित गिडार दाने पर नालीनुमा स्थान बनाकर बाहर निकल जाती हैं।

प्रबन्धन

- अवरोधी किस्में (आई.सी.पी.एल. 87119, एम.ए. 3, आई.सी.पी.एल. 8102-5, एस. 1, एस.एल. 12-3-1, एल.एल. 12-1) उगाएं।
- अरहर की बुवाई जल्दी (15 मई से 15 जून तक) करें।
- प्राकृतिक शत्रु जैसे *ओर्मीरस औरिएन्टालिस, यूडेरस लीविडस, यूरीटोमा* इत्यादि को खेत में छोड़ दें।
- नीम आधारित दवाईयाँ जैसे *लेम्बडा साइहेलोथ्रिन*5 ई.सी. (400-500 मि.ली. दवा 400-600 ली. पानी में मिलाकर या लूफेनुरोन 5.4 ई.सी. (2.5 ली. दवा 700 ली. पानी में) का छिड़काव करें।

कटाई एवं मड़ाई

- 80 प्रतिशत फलियों के पक जाने पर फसल की कटाई गड़ासे या हँसिया से 10 से.मी. की ऊँचाई पर करना चाहिए। तत्पश्चात फसल को सूखने के लिए बण्डल बनाकर फसल को खलिहान में ले आते हैं। फिर चार से पाँच दिन सुखाने के पश्चात पुलमैन थ्रेशर द्वारा या लकड़ी के लठ्ठे पर पिटाई करके दानों को भूसे से अलग कर लेते हैं।

उपज

- उन्नत विधि से खेती करने पर 18-20 कुन्तल प्रति हे. उपज एवं 50-60 कुन्तल लकड़ी प्राप्त होती है।

भण्डारण

- भण्डारण हेतु नमी का प्रतिशत 10-11 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। भण्डारण में कीटों से सुरक्षा हेतु एल्यूमीनियम फास्फाइड की 2 गोली प्रति टन प्रयोग करें।

बसंतकालीन उर्द एवं ग्रीष्मकालीन मूँग की उन्नत खेती

मूँग एवं उर्द की खेती सामान्यतः खरीफ के मौसम में एकल या अन्तः फसल के रूप में की जाती है। परन्तु, पिछले दो दशकों से सिंचाई की सुगम व्यवस्था होने, अल्पकालीन शीघ्र पकने वाली किस्मों के विकसित होने, सिंचाई की फव्वारा विधि, एवं अधिक आय प्राप्त होने इत्यादि कारणों से ग्रीष्मकालीन मूँग एवं बसंतकालीन उर्द की खेती को बढ़ावा मिल रहा है। इसके अतिरिक्त, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर के वैज्ञानिकों के शोध जैसे- अतिशीघ्र पकने वाली किस्में (60-65 दिन), अधिक उपज (1.0-1.5 टन/हे.) प्रकाश एवं तापमान के प्रति असंवेदनशील, समकालिक पकने वाली किस्में, मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु के प्रति प्रतिरोधी किस्मों के विकसित होने के कारण भी ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती के अन्तर्गत क्षेत्र अत्यधिक बढ़ रहा है।

जलवायु

मूँग में गर्मी सहन करने की क्षमता अधिक होती है एवं यह लगभग 60-65 दिन में पककर तैयार हो जाती है (किस्मों पर निर्भर)। सामान्यतः मूँग की वृद्धि हेतु 27° से. से 35° से. तक तापमान सर्वोत्कृष्ट रहता है फिर भी, इससे अधिक तापमान भी सहन करने की क्षमता होती है। मूँग एक प्रकार से ऊष्मा एवं शुष्कता के प्रति सहिष्णु फसल है।

इसी तरह, उर्द में भी अधिक तापमान सहन करने की क्षमता होती है एवं इसकी जड़ें अधिक गहराई तक जाती हैं। इसी कारण उर्द में अत्यधिक सूखा सहन

करने की क्षमता होती है। उर्द की वृद्धि हेतु अनुकूल तापमान 22° से. से 28° से. होता है। ग्रीष्मकाल में सूर्य की अत्यधिक रोशनी होने के कारण तापमान अधिक रहता है एवं आर्द्रता कम होती है इसलिए कीट एवं बीमारियों का प्रकोप भी कम होता है।

मृदा एवं खेत की तैयारी

मूँग एवं उर्द की सफलतम खेती, उपजाऊ एवं दोमट या बलुई दोमट मृदा जिसका पी.एच. मान 6.3-7.2 तक हो एवं जल निकास की उचित व्यवस्था हो, अच्छी रहती है। खेत की तैयारी करने के लिए 2-3 जुताई पर्याप्त रहती हैं। परन्तु गेंहूँ की कटाई के पश्चात् शून्य कर्षण द्वारा जीरो टिल-फर्टि ड्रिल द्वारा मूँग की बुवाई करने पर पैदावार में कमी नहीं आती है अपितु लागत में कमी आती है।

रबी फसल की कटाई उपरान्त खेत शुष्क रहता है अतः पलेवा करके एक बार हैरो से जुताई करके कल्टीवेटर द्वारा जुताई करें। यदि उर्द की खेती पूरक फसल के रूप में ली जा रही है तो जुताई की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मुख्य फसल में प्राथमिक जुताई की जाती है। बसंतकाल में उर्द की बुवाई हेतु समय की कमी होती है अतः शून्य कर्षण अपनाते हुए जीरो टिल-कम-फर्टि ड्रिल द्वारा बुवाई करना फायदेमंद होता है।

बीज एवं बीजोपचार

उचित नमी की अवस्था में बीज को 4-5 सेमी. गहराई तक बुवाई करें। ग्रीष्मकाल में मूँग एवं उर्द की वानस्पतिक वृद्धि कम होती है अतः पौधों की संख्या अधिक होना फायदेमंद रहता है। अधिक बढ़वार वाली किस्मों को 25×10 से.मी. एवं कम बढ़वार वाली किस्मों को 22.5×10 से.मी. पर बुवाई करें। 25-30 कि.ग्रा. बीज/हेक्टेयर पर्याप्त है।

मृदा एवं बीजजनित रोगों से बचाव हेतु बीजोपचार अति आवश्यक है। बीजोपचार हेतु *ट्राइकोडर्मा हारजिएनम* (5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) या थिरम (2.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) या कार्बेंडाजिम (2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) का प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त, राइजोबियम (250 ग्रा./10 कि.ग्रा. बीज) एवं फास्फोरस घोलक जीवाणु (250 ग्रा./10 कि.ग्रा. बीज) नामक जैव उर्वरकों द्वारा भी बीजोपचार करना लाभकारी होता है।

बुवाई का समय एवं फसल चक्र

उत्तर प्रदेश में ग्रीष्मकालीन मूँग की बुवाई 25 फरवरी से लेकर 10 अप्रैल तक की जा सकती है। परन्तु देरी से बुवाई करने पर जून के अंतिम सप्ताह में वर्षा होने पर फसल को नुकसान होने का खतरा रहता है, अतः जहाँ तक संभव हो, बुवाई 10 अप्रैल तक अवश्य कर दें। फसल सघनता बढ़ाने एवं अधिक आय अर्जित करने में ग्रीष्मकालीन मूँग मुख्य फसल हो सकता है। यह निम्नांकित फसल पद्धतियों में ली जा सकती है। जैसे ग्रीष्मकालीन मूँग-गन्ना/आलू/कपास/सरसों, मक्का/धान-सरसों/गेंहूँ-ग्रीष्मकालीन मूँग, मक्का-आलू ग्रीष्मकालीन मूँग, धान-आलू-ग्रीष्मकालीन मूँग, खरीफ मूँग- सरसों/गेंहूँ-ग्रीष्मकालीन मूँग, धान-गेंहूँ-ग्रीष्मकालीन मूँग इत्यादि।

उत्तर प्रदेश में बसंतकालीन उर्द की बुवाई 15 फरवरी से 15 मार्च तक करें। देरी से बुवाई करने पर अगेती मानसून द्वारा वर्षा होने पर फसल को नुकसान हो सकता है। मक्का-लाही-बसंतकालीन उर्द, मक्का-आलू-बसंतकालीन उर्द, ज्वार/मक्का-मटर-बसंतकालीन उर्द इत्यादि फसल चक्र अपनाकर आय एवं उपज बढ़ाई जा सकती है।

उन्नतशील किस्में

ग्रीष्मकालीन मूँग की 60-65 एवं बसंतकालीन उर्द की 70-80 दिन में पकने वाली किस्में उपयुक्त रहती हैं। अन्यथा देर से पकने वाली किस्में अगेती ग्रीष्मकालीन मानसून द्वारा वर्षा आने पर नुकसान हो सकता है एवं बीज गुणवत्ता में कमी आती है। उन्नत किस्में तालिका 1 एवं 2 में दर्शायी गई हैं।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

यदि ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती आलू, मटर (सब्जी) या सरसों/लाही के उपरान्त की जाती है तो नत्रजन की आवश्यकता नहीं होती है। गेंहूँ के उपरान्त मूँग की बुवाई करने पर 10 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 35 कि.ग्रा. फास्फोरस पर्याप्त होता है।

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के अनुसार करें। सामान्यतः मूँग एवं उर्द को 15-20 कि.ग्रा. नत्रजन, 40 कि.ग्रा. फास्फोरस, 20 कि.ग्रा. पोटाश

तालिका-1: ग्रीष्मकालीन मूँग की किस्में

किस्म	औसत उपज (कु./हे.)	परिपक्वता अवधि (दिन)	विशेषता
आई.पी.एम. 205–7 (विराट)	10–12	52–55	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु के प्रति प्रतिरोधी, चूर्णी फफूँदी के प्रति प्रतिरोधी
आई.पी.एम. 410–3	11–13	60–65	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु के प्रति प्रतिरोधी
आई.पी.एम. 02–14	11–13	60–65	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु के प्रति प्रतिरोधी
एस.एम.एल. 832	10–11	60–65	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु के प्रति प्रतिरोधी एवं थ्रिप्स के प्रति प्रतिरोधी
आई.पी.एम. 02–3	11–12	62–68	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु से प्रतिरोधी
आई.पी.एम. 99–125 (मेहा)	9–10	66–68	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु से प्रतिरोधी
एच.यू.एम. 12 (मालवीय जनचेतना)	11–12	60–62	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु से मध्यम प्रतिरोधी
एस.एम.एल. 668	11–13	60–62	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु से सहिष्णु

एवं 20 कि.ग्रा. गंधक प्रति हेक्टेयर के हिसाब से बुवाई के समय कूँडों में बीज से 2-3 से.मी. नीचे देवें।

सिंचाई

ग्रीष्मकालीन मूँग की सिंचाई भूमि के प्रकार, तापमान एवं हवा की तीव्रता पर निर्भर करती है। सामान्यतः 3-4 सिंचाई पर्याप्त होती हैं। अनावश्यक सिंचाई करने पर पौधे पीले पड़ सकते हैं एवं अधिक वनस्पतिक वृद्धि होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 20-25 दिन पश्चात् करें

तलिका-2: बसंतकालीन उर्द की उन्नत किस्में

किस्म	पकने की अवधि (दिन)	औसत उपज (कु./हे.)	विशेषता
आजाद उर्द 1 (के.यू. 92–1)	80	10.0	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
के.यू. 300	70	11.3	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
के.यू.जी. 479	70–75	10–12	मूँगबीन पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
के.यू. 309 (शेखर 3)	75–80	12–13	पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
नरेन्द्र उर्द 1 (एन.डी.यू. 88–8)	75–80	8–10	पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
उत्तरा (आई.पी.यू. 94–1)	80–85	8–11	पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
आजाद उर्द 2	70–75	10–12	पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
शेखर 2	75–80	10–12	पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी
आई.पी.यू. 2–43	70–75	10–12	पीत चितेरी विषाणु से अवरोध चूर्णी फफूंदी से अवरोधी
सुजाता	70–75	10–12	पीत चितेरी विषाणु से अवरोधी

एवं उसके बाद आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें। बुवाई के 50-55 दिन पश्चात् सिंचाई नहीं करें ताकि अधिक उपज मिले, फलियाँ एक साथ पकें एवं वनस्पतिक वृद्धि रूके। फव्वारा विधि द्वारा सिंचाई करने पर 30-40 प्रतिशत तक जल की बचत होती है। फव्वारा शाम के समय चलाएं ताकि वाष्पीकरण द्वारा जल की हानि कम से कम हो।

बसंतकालीन उर्द (कम समय में पकने वाली किस्में) की खेती पर्याप्त सिंचाई के साधन होने पर ही संभव है। उचित बीज अंकुरण एवं शुरूआत में फसल की अच्छी वृद्धि हेतु पलेवा करके बुवाई करें। पहली सिंचाई बुवाई के 25-30 दिन पश्चात करें। इसके पश्चात 12-15 दिन के अंतराल पर हल्की सिंचाई करें। 4-5

सिंचाई पर्याप्त होती हैं। अधिक उपज लेने हेतु शाखाएँ बनते समय, फूल आने एवं दाना बनते समय सिंचाई अवश्य करें। फव्वारा विधि द्वारा सिंचाई करने पर जल की बचत होती है, लागत में कमी आती है तथा पैदावार भी अच्छी होती है। अतः फव्वारा *(स्प्रिंकलर)* द्वारा सिंचाई करें।

खरपतवार प्रबंधन

खरीफ की तुलना में ग्रीष्मकाल में खरपतवार कम उगते हैं। फिर भी फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा काल/अवस्था (बुवाई के 20-25 दिन पश्चात्) तक खरपतवार मुक्त खेत रखना अत्यन्त जरूरी है। खरपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई पश्चात् एवं अंकुरण पूर्व पेंडिमेथालीन 30 ई.सी. की 3.3 लीटर मात्रा को 800-1000 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव करें। खरपतवार नियंत्रण एवं अन्य सस्य क्रियाएँ करने हेतु बुवाई पंक्तियों में करें। बुवाई के 20-25 दिन पश्चात् एक बार खुरपी/कस्सी द्वारा खरपतवार निकालना फायदेमंद रहता है।

प्रमुख रोग

पीत चितेरी विषाणु

इस रोग के प्रारंभिक लक्षण पत्तियों पर पीले धब्बे के रूप में दिखायी पड़ते हैं जो आपस में एक साथ मिलकर तेजी से फैलकर पत्तियों पर बड़े-बड़े धब्बे बनाते हैं। अन्ततः पत्तियाँ पूर्ण रूप से पीली हो जाती हैं। रोग ग्रसित पौधे देर से परिपक्व होते हैं तथा ऐसे पौधों में फूल और फलियाँ स्वस्थ पौधों की अपेक्षा बहुत ही कम लगती हैं। अत्यधिक ग्रसित पौधों में पत्तियों के साथ-साथ फलियों तथा दानों पर भी पीले धब्बे बन जाते हैं।

यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है और यह मक्खी पूरे वर्ष किसी न किसी पादप जाति पर पाई जाती है। गर्मियों में सफेद मक्खी अरहर से पीत चितेरी विषाणु ग्रहण करके ग्रीष्मकालीन मूंग एवं बसंतकालीन उर्द में विषाणु का संचारण करती है। इस तरह पीत चितेरी विषाणु एक मौसम से दूसरे मौसम तक जीवित रहकर एक फसल से दूसरी फसल में फैलता रहता है। रोग फैलने की गति सफेद मक्खी की संख्या पर निर्भर करती है। सफेद मक्खियों की संख्या अधिक होने पर यह रोग अधिक तीव्रता से फैलता है।

रोकथाम

- अवरोधी प्रजातियों का चयन इस रोग के प्रबंधन का सरलतम उपाय है।
- चूंकि यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है इसलिये सफेद मक्खी का नियंत्रण करके इस रोग को नियन्त्रित किया जा सकता है। खेत में रोग के लक्षण दिखते ही या बुवाई के 15 दिनों के पश्चात इमीडाक्लोप्रिड (Imidachloprid) 0.1 प्रतिशत (1 मि. ली./लीटर पानी) या डायमेथोएट (Dimethoate) 0.3 प्रतिशत (30 मि. ली. प्रति 10 लीटर पानी) का फसल पर छिड़काव करें। इन कीटनाशियों का दूसरा छिड़काव बुवाई के 45 दिनों के पश्चात करने से इस रोग का प्रकोप कम किया जा सकता है।

- रोग ग्रस्त पौधों को शुरू में ही उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

चूर्णिल आसिता रोग

गर्म या शुष्क वातावरण इस रोग के जल्दी फैलाने में सहायक होता है। इस रोग के मुख्य लक्षण पौधे के सभी वायवीय भागों में देखे जा सकते हैं। रोग का संक्रमण सर्वप्रथम निचली पत्तियों पर कुछ गहरे (बदरंगे) धब्बों के रूप में प्रकट होता है। इन्ही धब्बों पर छोटे-छोटे सफेद बिन्दु पड़ जाते हैं जो बाद में बढ़कर एक बड़ा सफेद धब्बा बनाते हैं। जैसे-जैसे रोग की उग्रता बढ़ती है यह सफेद धब्बे न केवल आकार में बढ़ते हैं। परन्तु ऊपर की नई पत्तियों पर भी विकसित हो जाते हैं। अन्ततः ऐसे सफेद धब्बे पत्तियों की दोनों सतह पर, तने, शाखाओं एवं फलियों पर फैल जाते हैं। इससे पौधों की प्रकाश संश्लेषण की क्षमता नगण्य हो जाती है और अन्त में सवंमित भाग झुलस/सूख जाते हैं।

रोग की रोकथाम

- रोग अवरोधी प्रजातियों का चुनाव करें।
- फसल पर घुलनशील गंधक का 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।
- कवकनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम (0.5 ग्रा./ली. पानी) या केराथेन (1 मि. ली./ली. पानी) का छिड़काव करें। प्रथम छिड़काव रोग के लक्षण दिखते ही करना चाहिए। आवश्यकतानुसार दूसरा छिड़काव 10-15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

प्रमुख कीट

सफेद मक्खी

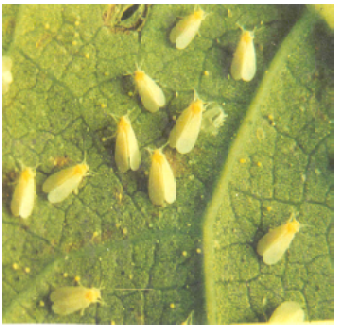

यह कीट न केवल मूँग की फसल का प्रमुख कीट है अपितु यह पीत चितेरी विषाणु रोग का भी संवाहक है। यह पौधों की कोशिकाओं का रस चूसकर भोजन प्राप्त करता है। जिसके कारण पौधे की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पौधों की पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं। सफेद मक्खी पौधों की पत्तियों पर काली फफूँदी की परत विकसित करती है जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम

- खेत एवं आस-पास की मेडों, सिंचाई की नालियों इत्यादि पर खरपतवार का उचित प्रबंधन करना चाहिए क्योंकि खरपतवार इस कीट के विकल्पी पोषक होते हैं।
- कीट अवरोधी प्रजातियों का चयन करें। जैसे कि, मूँग की एच.यू.एम. 16, पी.डी.एम. 139, पूसा विशाल, आई.पी.एम. 2-3, मेहा, आई.पी.एम. 2-14 एवं उर्द की आई.पी.यू. 2-43, पन्त यू. 19, यू.जी. 218, उत्तरा, पन्त यू. 30 इत्यादि।

- डाइमेथोएट (Dimethoate) 30 ई.सी. (0.7 मि.ली./लीटर पानी) या एसिफेट (Acephate) 75 एस.पी. (1 ग्रा./ली. पानी) या इमिडाक्लोप्रिड (Imidachloprid) 17.8 एस.एल. (0.2 मि.ली./ली. पानी) का छिड़काव करें एवं 15 दिन पश्चात् पुनः छिड़काव करें।

पर्णजीवक

इस कीट की प्रौढ़ तथा शिशु अवस्थायें पौधों में कलियों एवं फूलों का रस चूसते हैं। अधिक प्रकोप की स्थिति में पुष्प झड़कर नीचे गिर जाते हैं, जिसके कारण पौधों पर फलियाँ नहीं बनती। ग्रीष्मकालीन मूंग एवं बसंतकालीन उर्द की फसल में फूल बनते समय (मई से मध्य जून) इसका अत्याधिक प्रकोप पाया जाता है। इस कीट की अत्याधिक प्रकोप की अवस्था में पौधा झाड़ी जैसी बढ़वार लेता है और फसल गहरी हरी रंग की दिखती है। ऐसी फसल में फलियाँ व दाने सिकुड़े से दिखते हैं।

रोकथाम

- फसल में समय पर सिंचाई (15 दिन के अंतराल पर) करने पर इस कीट की संख्या की बढ़वार को रोकती है।
- थायोमेथोक्सान 70 डब्ल्यू.एस. (5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. बीज) द्वारा बीजोपचार करें।
- डाइमेथोएट (Dimethoate) 30 ई.सी. (0.7 मि.ली./ली. पानी) या ट्राएजोफॉस (Triazophos) 40 ई.सी. (2 मि.ली/ली. पानी) या एन.एस.के.ई. (NSKE) (3.5 मिली./ली. पानी) का छिड़काव करें।
- थायोमेथोक्सान 25 डब्ल्यू.जी. (0.2 मि.ली./ली. पानी) या ईथीयॉन 50 ई.सी. (2 मि.ली./ली. पानी)।

अधिक उत्पादन के लिए चना की उन्नत खेती

भारत की ज्यादातर शाकाहारी आबादी के लिए प्रोटीन का प्रमुख स्रोत दलहन ही है। अनाज पर आधारित भोजन में दलहन सम्मिलित करने पर पोषकयुक्त संतुलित आहार उपलब्ध होने की अपार संभावनाएँ हैं। औसत रूप से दालों में 20-25 प्रतिशत तक प्रोटीन पाई जाती है, जो कि अनाज वाली फसलों की तुलना में 2.5-3.0 गुना अधिक होती है इसीलिए प्रति व्यक्ति दालों की उपलब्धता बढ़ाने हेतु अन्य दलहन के साथ-साथ चना की उत्पादकता एवं उत्पादन बढ़ाने के लिए एकीकृत प्रयास करने की आवश्यकता है, जिससे पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके। चना की खेती करने से मानव के लिए प्रोटीन एवं पशुओं हेतु उच्च गुणवत्ता युक्त (प्रोटीन युक्त) चारे की उपलब्धता भी होती है। चना उगाने से भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है एवं यह टिकाऊ कृषि में सहायक होती हैं। चना या अन्य दलहन उगाने से भूमि की भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में वृद्धि होती है, साथ ही चना की जड़ों में पाई जाने वाली ग्रंथियों में राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करके पौधों को उपलब्ध कराता हैं जो कि एक लघु नत्रजन फैक्टरी के रूप में कार्य करता हैं। चना की जड़े भूमि में वायुवीय संचार को बढ़ाने में भी सहायक होती हैं। अधिक पैदावार वाली एवं सूखा सहन करने वाली किस्मों के विकास से चना अनाज के तिलहन साथ फसल प्रणाली में संगत रूप से उपयुक्त है। जिससे किसानों की कुल आय एवं उत्पादकता में वृद्धि संभव है। मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में चना की उत्पादकता बढाने की अपार संभावनाएँ हैं और वह भी खासकर बुंदेलखंड क्षेत्रों में। इस क्षेत्र में सिंचाई के संसाधन नगण्य या कम होने के कारण किसानो को विवश होकर चना या अन्य दलहन जैसे मसूर, मटर आदि की खेती करनी पड़ती है। चना की फसल को पानी

देशी चना की प्रमुख प्रजातियाँ

देशी चना की प्रमुख प्रजातियाँ	पूसा शुभा, जे.जी. 16, गुजरात चना 1, बी.जी.डी. 72, पूसा 391, विजय, पूसा 372, जे.ए.के.आई 9218, दिग्विजय, जे.एस.सी. 55, जे.एस.सी. 56, जे.जी. 14, उदय
काबुली चना की प्रमुख प्रजातियाँ	शुभ्रा, जे.जी.के. 1, के.ए.के. 2, उज्जवल, फूले जी, 0517, पी.के.वी. काबुली 4

की कम आवश्यकता होती है, अतः यह फसल किसानों के लिए अधिक लाभकारी भी है।

फसल उत्पादन प्रौद्योगिकी

सिंचाई, उर्वरक तथा कृषि रसायनों के प्रयोग के बारे में कृषकों की बढ़ती जागरूकता दलहन उत्पादकता बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही है। सामयिक बुआई के साथ पर्याप्त पौधों की संख्या, राइजोबियम कल्चर तथा कवकनाशियों से बीजोपचार, खरपतवार प्रबन्धन तथा संसाधन संरक्षण तकनीक जैसे बिना लागत के अथवा न्यूनतम निवेश वाले आदान भी उत्पादकता की वृद्धि करते है।

दलहन आधारित प्रमुख फसल चक्र

- उत्तर-पँचिम मैदानी क्षेत्र में अरहर-गेहूँ तथा उर्द/मूँग-गेहूँ फसल प्रणाली एवं मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्रों में धान-धान-मूँग महत्वपूर्ण फसल प्रणालियाँ है।
- मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्रों में अरहर+ज्वार/मूँगफली/मूँग/उर्द/कपास तथा उत्तर-पश्चिमी एवं उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में खरीफ ऋतु में अरहर+मक्का+सरसों/सूरजमुखी/अलसी प्रमुख अन्तर्सस्य पद्धतियाँ हैं।

मृदा एवं खेत की तैयारी

- उचित जल निकासी वाले खेत जिनमें घुलनशील लवणों की मात्रा अधिक न हो, पी.एच. मान 6.5 से 8.5 के मध्य हो तथा बलुई दोमट से चिकनी दोमट मृदा चना की फसल के लिए आदर्श होती है।
- दलहनी फसलों को सामान्यतः बहुत अच्छे खेत की आवश्यकता नहीं होती। एक गहरी जुताई के बाद *क्रॉस हेरोइंग* तथा *प्लैन्किंग* (पाटा लगाने) से बुआई हेतु खेत तैयर हो जाता है। मसूर/उर्द/मूँग जैसी दलहनी फसलों की उतेरा पद्धति से बुआई करने हेतु किसी भी प्रकार की कर्षण क्रिया की आवश्यकता नहीं होती है।
- उत्तर-पश्चिमी, मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्रों में जल के संरक्षण एवं जल उपयोग की कुशलता में वृद्धि करने हेतु मेड़ एवं नाली बनाएं।
- उत्तर-पश्चिमी तथा पूर्वी क्षेत्रों में जहाँ बहुत अधिक वर्षा होती है, उठी हुई शैय्या बनाकर मेड़ एवं नाली बनाकर बोना एक आदर्श बुआई विधि है।

बीजोपचार

- बुआई से पूर्व मृदाजनित रोगों से बचाव हेतु बीजों को कवकनाशी (केप्टान अथवा थीरम 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) तथा नत्रजन स्थिरीकरण एवं फास्फोरस उपलब्धता बढ़ाने हेतु राइजोबियम तथा फास्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.-15-20 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करना चाहिए।

बीज-दर तथा बुआई का समय

- बुआई हेतु बीज शुद्ध, रोग तथा भौतिक क्षति मुक्त तथा 90-95% अंकुरण क्षमता वाला होना चाहिए।

चना के छोटे दाने वाली प्रजातियों (12-15 ग्राम/100 दाने) हेतु बीज दर 50-60 कि.ग्रा./हे. तथा मध्यम व बड़े दानों वाली प्रजातियों (25 ग्राम/100 दाने) हेतु 80-85 कि.ग्रा./हे. उचित है। बुआई का उचित समय उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी भारत के मैदानी क्षेत्रों में बारानी दशाओं में अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा तथा सिंचित दशाओं में नवम्बर का प्रथम पखवाड़ा है। मध्य तथा दक्षिणी भारत के बारानी क्षेत्रों हेतु अक्टूबर का प्रथम पखवाड़ा तथा सिंचित क्षेत्रों हेतु अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा बुआई के लिए उपयुक्त होता है।

पौध संख्या - चना में 33-40 पौधे/मी^{2}

उर्वरक प्रबन्धन

- सामान्य दशाओं में नाइट्रोजन 15-20 कि.ग्रा., फास्फोरस 40 कि.ग्रा., पोटाश 20 कि.ग्रा. तथा गंधक 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का बुआई पूर्व आधारीय प्रयोग संस्तुत किया जाता है।
- फली बनते समय अथवा देर से बोई गई फसल में शाखाओं के बनते समय 2% यूरिया/डी.ए.पी. के घोल का छिड़काव करने से समुचित पैदावार मिलती है।
- मृदा में विशिष्ट सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होने पर 15-20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हे. तथा 1-1.5 कि.ग्रा. अमोनियम मौलिब्डेट के प्रयोग की संस्तुति की जाती है।

खरपतवार प्रबन्धन

- उत्पादकता में कमी को रोकने हेतु फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। इसके लिए गुड़ाई एवं हाथ से निकाई जैसी कर्षण क्रियाओं के साथ खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग उचित रहता है।
- खरपतवारों की आरम्भिक वृद्धि पर नियन्त्रण हेतु बुआई के तुरन्त बाद (72 घंटे के अन्दर) पेन्डीमीथिलिन 1.0-1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- अंकुरण उपरान्त खरपतवारनाशी इमेजीथाइपर का 100 ग्रा. सक्रिय तत्व/हे. के प्रयोग से चना की फसल में प्रभावी खरपतवार नियंत्रण होता है।

जल प्रबन्धन

- मध्य भारत में हल्की मृदाओं में चना की फसल में शाखाऐं निकलते समय तथा फली बनते समय 1-2 सिंचाई लाभप्रद पाई गयी हैं। उत्तर भारत में शीतकालीन वर्षा तथा उच्च सापेक्ष आर्द्रता के कारण सिंचाई से कोई विशेष लाभ नहीं मिलता।
- फूल आने की अवस्था में सिंचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा फूलों के गिरने तथा अतिरिक्त वानस्पतिक वृद्धि होने की समस्या उत्पन्न हो सकती है।
- चना की फसल में स्प्रिंकलर विधि से सिंचाई करना सर्वोत्तम है।

संसाधन संरक्षण

- धान के कटने के बाद नो-टिल सीड ड्रिल की सहायता से चना की बुआई करने और धान की पुआल की पलवार खेत में छोड़ने पर मृदा में नमी का पर्याप्त संरक्षण होता है और चना की उपज में वृद्धि होती है।
- मक्का-चना फसल प्रणाली में, मक्का में 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस + 5 टन गोबर की खाद तथा चना में 40 कि.ग्रा. फॉसफोरस + फास्फोरस घुलनशील जीवाणु के प्रयोग से फॉस्फोरस की उपयोग क्षमता में वृद्धि होती है।

उन्नत कृषि यंत्र

- **मानव संचालित नो-टिल ड्रिल** : छोटे किसानों के लिए कम खर्च वाला तथा धान से खाली हुए खेतों में संचित नमी में लाइन में बुआई के लिए उपयुक्त। इसकी बुआई क्षमता केवल दो व्यक्तियों की सहायता से 0.05 हे./घंटा है।
- **वर्टिकल थ्रेशर** : न्यूनतम समायोजन के साथ विभिन्न दलहनी फसलों के लिए उपयोगी। चना के लिए इसकी क्षमता 300 कि.ग्रा./घंटा तथा स्ट्रिप्ड अरहर (बिना डंठल) के लिए 450 कि.ग्रा./घंटा है।
- **अरहर स्ट्रिपर** : 150 कि.ग्रा./घंटे की क्षमता के साथ यह अरहर की फलियों और पत्तियों की वर्टिकल थ्रेशर से मड़ाई की जा सकती है।
- **सक्शन विनोअर** : इसकी ओसाई क्षमता 150 कि.ग्रा./घंटा है। इसके द्वारा धूल, मिट्टी और हल्के अपमिश्रण चूषण विधि द्वारा परिचालक की विपरीत दिशा में उड़ा दिये जाते हैं।

कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकी

- **आई.आई.पी.आर. दाल मिल** : दो अश्व शक्ति की सिंगल फेस मोटर द्वारा चालित इस दाल मिल की क्षमता 75-125 कि.ग्रा./घंटा है। ग्रामीण उद्यमी, बेरोजगार युवक तथा प्रगतिशील किसानों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है।

चना की फसल सुरक्षा तकनीक

इसके अलावा कुछ अन्य निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपाय या तकनीकियों के द्वारा उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है :

(क) जैवीय एवं अजैवीय स्वराघात के कारकों से बचाव करके

(ख) विविध रोग एवं कीटरोधी प्रजातियाँ उगाकर

(ग) सूखा सहनशील लधु अवधि वाली प्रजातियाँ उगाकर

(ध) नमी संरक्षण के उपाय अपनाकर

(ड़) उच्च कोटि की उत्पादन तकनीकियों को अपनाकर

(च) एकीकृत कीट एवं रोग प्रबन्धन अपनाकर

(छ) अच्छी कृषि क्रियाएँ अपनाकर, इत्यादि।

1. एकीकृत रोग एवं व्याधि प्रबन्धन

उकठा रोग

यह चना का प्रमुख मृदाजनित रोग है। उकठा रोग का प्रमुख कारक 'फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम प्रजाति साइसेरी' नामक फफूँद है। यह समान्यतः मृदा एवं बीजजनित बीमारी है, जिसकी वजह से 10-12 प्रतिशत तक पैदावार में कमी आती है। यह एक तांत्रिक/दैहिक व्याधि होने के कारण पौधे के जीवनकाल में कभी भी ग्रसित कर सकती है। यह फफूँद बगैर पोषक या नियन्त्रक के भी मृदा में लगभग छः वर्षों तक जीवित रह सकती है। वैसे तो यह व्याधि सभी क्षेत्रों में फैल सकती है परन्तु जहाँ ठण्ड अधिक एवं लम्बे समय तक पड़ती है, वहाँ पर कम होती है। यह व्याधि पर्याप्त मृदा नमी होने पर एवं तापमान 25-30° सेन्टिग्रेड होने पर तीव्र गति से फैलती है। इस बीमारी के प्रमुख लक्षण निम्नांकित हैं :

- रोगग्रस्त पौधे के उपरी हिस्से की पत्तियाँ एवं डंठल (पिटियॉल) झुक जाते हैं।
- पौधा सूखना शुरू कर देता है एवं मरने के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

- सूखने के बाद पत्तियों का रंग भूरा या तने जैसा हो जाता है।
- जवान एवं अंकुरित पौधे कम उम्र में ही मर जाते हैं तथा भूमि की सतह वाले क्षेत्र में आंतरिक ऊतक भूरे या रंगहीन हो जाते हैं।
- यदि तने को लम्बवत् चीरा लगाएगें तो तम्बाकू के रंग की तरह धारा दिखाई पड़ती है। परन्तु, यह पतली एवं लम्बी धारी तने के ऊपर दिखाई नहीं देती है।

प्रबन्धन

- बुवाई उचित समय, अक्टूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक करें।
- गर्मियों (मई-जून) में गहरी जुताई करने से फ्यूजेरियम फफूँद का संवर्धन कम हो जाता है। मृदा का सौर उपचार करने से भी रोग में कमी आती है।
- 5 टन/हे. की दर से कम्पोस्ट का प्रयोग करें।
- निम्नांकित फफूँदनाशी द्वारा बीज शोधन करें-

  1 ग्रा. कार्बेन्डाजिम (बाविस्टीन) या कार्बेक्सिन या 2 ग्रा. थिरम एवं 4 ग्रा. ट्राइकोडर्मा विरिडी प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से बीजोपचार करें। इसी प्रकार, 1.5 ग्रा. बेन्लेट टी (30% बेनोमिल एवं 30% थिराम) प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करने पर मृदाजनित रोगाणुओं को मारने में लाभप्रद है।
- उकठा रोग प्रतिरोधी निम्नलिखित किस्में उगाएं-

  डी.सी.पी. 92-3, हरियाणा चना 1, पूसा 372, पूसा चमत्कार (काबुली), जी.एन.जी. 663, के.डब्ल्यू.आर. 108, जे.जी. 315, जे.जी. 16 (साकी 9516), जे.जी. 74, जवाहर काबुली चना 1 (जे.जी.के. 1, काबुली), विजय, फूले जी 95311 (काबुली)।
- उकठा का प्रकोप कम करके हेतु तीन साल का फसल चक्र अपनाए। मतलब तीन साल तक चना नहीं उगाएं।
- सरसों या अलसी के साथ चना की अन्तः फसल लें।

- भूमिजनित एवं बीजजनित रोगों के नियंत्रण हेतू *बायोपेस्टीसाइट* (जैवकवकनाशी) *ट्राइकोडर्मा विरिडी* 1 प्रतिशत डब्लू.पी. अथवा *ट्राइकोडर्मा हरजिएनम* 2 प्रतिशत डब्लू.पी. 2.5 कि.ग्रा./हे. मात्रा को 60-75 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8-10 दिन तक छाया में रखने के बुवाई के पूर्व आखिरी जुताई पर भूमि में मिला देने से चना को भूमि/बीजजनित दोनों रोगों से बचाया जा सकता है।

शुष्क-मूल विगलन

यह मृदाजनित रोग है। पौधों में संक्रमण *'राइजोक्टोनिया बटाटीकोला'* नामक कवक से फैलता है। मृदा नमी की कमी होने पर एवं वायु का तापमान 30^0 सेंटिग्रेड से अधिक होने पर इस बीमारी का गंभीर प्रकोप होता है। सामान्यतया इस बीमारी का प्रकोप पौधों में फूल आने एवं फलियाँ बनते समय होता है। रोग से प्रभावित पौधों की जड़ें अविकसित तथा काली होकर सड़ने लगती है एवं आसानी से टूट जाती है। जड़ों में दिखाई देने वाले भाग और तनों के आंतरिक हिस्सों पर छोटे काले रंग की फफूँदी के जीवाणु देखे जा सकते हैं। संक्रमण अधिक होने पर पूरा पौधा सूख जाता है एवं रंग भूरा/तिनके जैसा हो जाता है। जड़ें काली या भंगुर हो जाती हैं एवं कुछेक या नगण्य पाश्विक जड़ें ही बच पाती हैं।

नियंत्रण

- फसल चक्र अपनाएँ।
- फफूँदनाशक द्वारा बीजोपचार करने से बीमारी के शुरूआती विकास को रोका जा सकता है।
- समय पर बुवाई करें, क्योंकि फूल आने के उपरान्त सूखा पड़ने एवं तीक्ष्ण गर्मी बलाघात से बीमारी का प्रकोप बढ़ता है।
- सिंचाई करने से इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

स्तम्भ मूल संधि विगलन

इस बीमारी का कारक *'स्क्लेरोशियम रॉल्फसी'* नामक कवक है। इस रोग का प्रकोप प्रायः सिंचित क्षेत्रों अथवा बुवाई के समय मृदा में नमी की बहुतायतता,

भू-सतह पर कम सड़े हुए कार्बनिक पदार्थ की उपस्थिति, निम्न पी.एच. मान एवं उच्च तापक्रम (25-30^0 सेंटिग्रेड) होने पर अधिक होता है। अंकुरण से लेकर एक-डेढ़ महीने की अवस्था तक पौधे पीले होकर मर जाते है। जमीन से लगा तना एवं जड़ की संधि का भाग पतला एवं भूरा होकर सड़ जाता है। तने के सड़े भाग से जड़ तक सफेद फफूँद एवं कवक के जाल पर सरसों के दाने के आकार के *स्कलेरोशिया* (फफूँद के बीजाणु) दिखाई देते हैं।

नियंत्रण

- फफूँदनाशी द्वारा बीज शोधित करके बुवाई करें।
- अनाज वाली फसलों जैसे- गेहूँ, ज्वार, बाजरा को लम्बी अवधि तक फसल चक्र में अपनाएं।
- बुवाई से पूर्व पिछली फसल के सड़े-गले अवशेष एवं कम सड़े मलबे को खेत से बाहर निकाल दें।
- बुवाई एवं अंकुरण के समय खेत में अधिक नमी नहीं होनी चाहिए।
- कार्बेंडाजिम 0.5 प्रतिशत या बेनोमिल 0.5 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

चाँदनी *(एस्कोकाइटा ब्लाइट)* रोग

'एस्कोकाइटा' पत्ती धब्बा रोग एक बीमारी है जो कि *'एस्कोकाइटा रेबि'* नामक फफूँद द्वारा फैलती है। उच्च आर्द्रता एवं कम तापमान की स्थिति में यह रोग फसल को क्षति पहुँचाता है। पौधे के निचले हिस्सें पर गेरूई रंग के भूरे कत्थई रंग के धब्बे पड़ जाते हैं एवं संक्रमित पौधा मुरझाकर सूख जाता है। पौधे के धब्बे वाले भाग पर फफूँद के फलनकाय *(पिकनीडिया)* देखे जा सकते हैं। रोगग्रस्त पौधे की पत्तियों, फूलों और फलियों पर हल्के भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं।

प्रबन्धन

- फसल चक्र अपनाएँ।
- चाँदनी से प्रभावित या ग्रसित बीज को नहीं उगाएँ।

- गर्मियों में गहरी जुताई करें एवं रोगग्रस्त फसल अवशेष एवं अन्य घास को नष्ट कर दें।
- कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत एवं थिराम 50 प्रतिशत (1:2) 3.0 ग्राम की दर से अथवा ट्राइकोडर्मा 4.0 ग्रा./किग्रा. बीज की दर से बीज शोधन करें।
- केप्टान या मेंकोजेब या क्लोरोवेलोनिल (2-3 ग्रा./ली. पानी) का 2-3 बार छिड़काव करने से बीमारी को रोका जा सकता है।

धूसर फफूँद (बोट्राइटिस ग्रे मोल्ड)

अनुकूल वातावरण होने पर यह रोग सामान्यतः पौधों में फूल आने एवं फसल के पूर्णरूप से विकसित होने पर फैलता है। वायुमण्डल एवं खेत में अधिक आर्द्रता होने पर पौधों पर भूरे या काले भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। फूल झड़ जाते हैं एवं संक्रमित पौधे पर फलियाँ नहीं बनती है। शाखाओं और तनों पर जहाँ फफूँद के संक्रमण से भूरे या काले धब्बे पड़ जाते हैं, उस स्थान पर पौधा गल या सड़ जाता है। तन्तुओं के सड़ने के कारण टहनियाँ टूटकर गिर जाती हैं और संक्रमित फलियों पर नीले धब्बे पड़ जाते हैं। फलियों में दाने नहीं बनते हैं, एवं बनते भी है तो सिकुड़े हुए होते हैं। संक्रमित दानों पर भूरे व सफेद रंग के कवक तन्तु दिखाई देते हैं।

प्रबन्धन

- बुवाई देरी से करने पर रोग का प्रकोप कम होता है।
- रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करें।
- इस रोग से प्रभावित क्षेत्रों में कतार से कतार की दूरी बढ़ाकर (45 से.मी.) बुवाई करें ताकि फसल को अधिक धूप एवं प्रकाश मिले एवं आर्द्रता में कमी आएं।
- बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही तुरन्त केप्टान या कार्बेंडाजिम या मेंकोजेब या क्लोरोथेलोनिल का 2-3 बार एक सप्ताह के अन्तराल पर छिड़काव करें ताकि प्रकोप से बचा जा सकें।

2. एकीकृत कीट प्रबन्धन

चना फली भेदक

'हेलिकोवर्पा आर्मिगेरा (हबनर)' एक बहुभक्षी कीट है, जो समान्यतः चना फली भेदक नाम से जाना जाता है। सम्पूर्ण भारत में चना की फसल पर लगने वाला यह प्रमुख कीट है। यह कीट 181 प्रकार की फसलों एवं 48 प्रकार के खरपतवार को खा सकता है। इसका प्रकोप पत्तियों व पुष्पों की अपेक्षा फलियों पर सर्वाधिक होता है। इस कीट की छोटी सूँड़ी फसल की कोमल पत्तियों को खुरच-खुरच कर खाती है एवं द्वितीयक सूँड़ी सम्पूर्ण पत्तियों, कलियों एवं पुष्पों को खाती है, जबकि तृतीयक अवस्था की सूँड़ी चना की फली में गोलाकार छिद्र बनाकर मुँह अन्दर घुसाकर दाने को खा जाती है। एक वयस्क सूँड़ी 7-16 फलियों को क्षतिग्रस्त कर सकती है।

प्रबन्धन

- सेक्स फेरोमोन ट्रेप द्वारा कीट आबादी के फैलाव या व्यापकता की निगरानी की जा सकती है। फेरोमोन ट्रेप विपरीत लिंग के कीटों को आकर्षित करता है। यदि एक रात में मादा मोथ की संख्या 4-5 तक ट्रैप में चिपक जाती है, तो रोकथाम के उपयुक्त उपचार अपनाने चाहिए।
- गर्मियों में गहरी जुताई करने से कीट के प्यूपा मर जाते हैं।
- समय पर बुवाई करने एवं जल्दी पकने वाली किस्में उगाने से कीट के प्रकोप से बचा जा सकता है।
- एच.ए.एन.पी.वी. 250, एल.ई. (डिम्ब समतुल्य) + टिनॉपोल 1% का छिड़काव करें। इसके घोल में 0.5% गुड़ एवं 0.01% तरल साबुन का घोल डालने से क्रमशः कीटों के आकर्षण एवं एन.पी.वी. के पत्तियों पर फैलने में मदद मिलती है।
- नीम बीज गुठली सत्त का 5% का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- मोनोक्रोटोफॉस (0.04%), फेनवेल्रेट (0.01%) एवं क्लोरपाइरीफॉस का छिड़काव करें। यदि तरल निरूपण उपलब्ध नहीं हो तो फेनवेलरेट (0.5%) मिथाइल

पेराथियान (2%) चूर्ण का 20-25 किग्रा./हे. की दर से भुरकाव करें।

कटुआ कीट *(कटवर्म)*

इस कीट की भूरें रंग की सूँड़ियाँ रात में निकलकर नए पौधे को जमीन की सतह से काट कर गिरा देती है। इस कीट का प्रकोप उन क्षेत्रों मे अधिक होता है, जहाँ पर बुवाई से पूर्व बरसात का पानी भरा रहता है एवं मृदा भारी या चिकनी हो। कीट की गिड़ारें चिकनी, लिचलिची एवं देखने में हल्के स्याही या गहरे भूरे रंग की तैलीय होती है। *कटवर्म* की लटें गहरे भूरें रंग की एक से डेढ़ इंच लम्बी व एक चौथाई इंच से एक तिहाई इंच मोटी होती है, जो ढ़ेलों के नीचे छिपी रहती हैं और रात को बाहर निकलकर पौधों को भूमि की सतह के पास से काट देती है। छूने पर ये लटें गोल घुण्डी बनाकर पड़ जाती हैं। यदि एक सूँडी प्रति वर्ग मी. क्षेत्र में पौधे की वानस्पतिक अवस्था में दिखाई दें तो आर्थिक नुकसान हो सकता है।

प्रबन्धन

- क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से आखिरी जुताई से पूर्व भुरक कर भूमि में मिलाएं।
- यदि भूमि उपचार नहीं कर पाएँ तो *कटवर्म* का प्रभाव दिखाई देते ही शाम के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा./हे. का भुरकाव करके प्रकोप से बचा जा सकता है।
- खेत में जगह-जगह सूखी घास के छोट-छोटे ढेर को रख देने से दिन में कटुआ कीट की सूँडियां छिप जाती है। जिसे प्रातःकाल इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए।
- एक हेक्टेयर क्षेत्र में 50-60 बर्ड *पर्चर* (पक्षी मचान) लगाना चाहिए ताकि चिड़ियाँ उन पर बैठकर सूँडियों को खा सकें।

दीमक

यह जड़ों को काटकर उसके अन्दर रहती है। कीट से प्रभावित पौधों के ऊपर दीमक मिट्टी की सुरंगें बनाकर उसके भीतर रहती हैं।

प्रबन्धन

- क्लोरपाइरिफॉस 20 ई.सी. की 1.0 ली. मात्रा प्रति हे. 100 कि.ग्रा. बीज की दर से बीज शोधन करें।
- खड़ी फसल में दीमक लगने पर 4 ली. क्लोरपाइरिफॉस 20 ई.सी. की मात्रा प्रति हे. की दर से सिंचाई के पानी के साथ दें।
- खड़ी फसल में 0.05 प्रतिशत क्लोरपाइरिफॉस के घोल को पौधों की जड़ों के पास छिड़काव भी कर सकते हैं।
- क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 4 ली. मात्रा को मिट्टी में मिलाकर भूरकाव (डस्टिंग) करें।

अर्द्धकुण्डलीकार कीट *(सेमीलूपर)*

इस कीट की सूँड़ियाँ हरे रंग की होती हैं जो लूप बनाकर चलती हैं। सूँड़ियाँ पत्तियों, कोमल टहनियों, कलियों, फूलों एवं कलियों को खाकर क्षति पहुँचाती हैं।

प्रबन्धन

- *बेसिलस थूरिजिएन्सिस (बी.टी.)* की कर्स्टकी प्रजाति 1.0 किग्रा. 500-600 ली. पानी में घोलकर प्रति हे. छिड़काव करें।
- एमामेक्टिन बेंजोएट 0.2 ग्रा./ली. पानी या स्पीनोसाड 0.25 ग्रा./ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 500-600 ली. पानी पर्याप्त है।

कीट आर्थिक क्षति स्तर

कीट का नाम	फसल की अवस्था	आर्थिक क्षति स्तर
कटुआ/*कटवर्म*	वानस्पतिक अवस्था	एक सूँड़ी प्रति वर्ग मी.
अर्द्धकुण्डीकार कीट	फूल एवं फलियाँ बनते समय	दो सूँड़ी प्रति 10 पौधे
फलीभेदक कीट	फूल एवं फलियाँ बनते समय	दो पौधा अथवा एक बड़ी सूँड़ी प्रति 10 पौधे अथवा 4–5 नर पतंगे प्रति गंधपाश लगातार 2–3 दिन तक मिलने पर

3. एकीकृत सूत्रकृमि प्रबन्धन

चना एवं अन्य रबी दलहनी फसलों को सामान्यतः जड़ ग्रंथि सूत्रकृमि *(मेलोइडोगाइनी जावानिका, मे. इनकोग्निटा),* मूल जख्म सूत्रकृमि *(प्रेटिलेंक्स थोर्नी),* रेनीफॉर्म *(रोटिलेन्कुलस रेनिफॉर्मिस),* पुट्टी *(सिस्ट)* सूत्रकृमि *(हेट्रोडेरा स्वरूपी* एवं *हेट्रोडेरा केजेनी)* इत्यादि सूत्रकृमि मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं।

सूत्रकृमि या गोलकृमि धागे के आकार के रंगहीन कीड़े होते हैं, जिनको खुली आँखों से देखना मुश्किल होता है। ये छोटे, पतले, खण्डरहित धागे के जैसे सदृश्य एवं द्विलिंगी होते हैं। ये मृदा के भीतर 15-30 से.मी. की गहराई में पाए जाते हैं, जहाँ पर पौधों की जड़ें होती हैं। सूत्रकृमि प्रायः जड़ ऊतकों के कार्य में बाधा डालते हैं। फलस्वरूप जड़ द्वारा पोषण एवं जल का अवशोषण अवरूद्ध हो जाता हैं। इसी कारण प्रभावित पौधे के वायवीय भागों में पोषक तत्वों एवं जल की कमी एवं लवणता की प्रचुरता बढ़ जाती है। इसकी वजह से पौधों की वृद्धि रूक जाती है, पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं तथा शाखाएँ कम निकलती हैं। अधिक प्रकोप होने पर फूल, फली एवं दाने बनना पूरी तरह से प्रभावित होता है। सूत्रकृमि पौधें के भूमिगत भागों में पाए जाने की वजह से जड़ों में गाँठे बनना, जड़ों में अत्यधिक शाखाएँ निकलना, जड़ की ऊपरी परत का छिलका उतारना, पत्तियों पर उभार उत्पन्न होने जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

सूत्रकृमि नियंत्रण के उपाय

- ग्रीष्म ऋतु में खेत की गहरी जुताई करने से सूत्रकृमि की जनसंख्या को काफी नियंत्रित किया जा सकता है।
- गेहूँ व जौ इत्यादि गैर-पोषक फसलों को फसल चक्र में अपनाएँ। मक्का, बाजरा, ज्वार इत्यादि को भी फसल अनुक्रम में लें।
- चना, मसूर, राजमा, मटर के साथ सरसों या तोरिया की अन्तःफसल लें।
- कार्बोसल्फान, कार्बोफ्यूरान, फेनोफॉस, एल्डीकार्ब, बन्डीकार्ब, डायाजिनॉन, ट्राइजोफास इत्यादि द्वारा 1-3% सक्रिय तत्व द्वारा बीजोपचार करने से जड़ ग्रंथि सूत्रकृमि, *लेजन* सूत्रकृमि एवं अन्य सूत्रकृमि से बचाव किया जा सकता है।
- सूत्रकृमि अवरोधी प्रजातियों का चयन करें।

दलहनी फसलों में *ट्राइकोडर्मा* द्वारा जैविक नियंत्रण

एक आकलन के अनुसार, दलहनी फसलों में होने वाले रोगों से उनके उत्पादकता में प्रति वर्ष 11 से 20 प्रतिशत की कमी आती है। अतः उनकी रोकथाम के लिए कवकनाशक दवाओं के प्रयोग से उनका अच्छा परिणाम मिल सकता है। परन्तु अधिकांशतः इन हानिकारक रसायनों के अवशेषों से पर्यावरण में विभिन्न समस्याएं उत्पन्न होती देखी जा सकती हैं। इन रसायनों का उपयोगी जीव-जन्तुओं पर विपरीत असर पड़ता है। खास करके मिट्टी में पनपने वाले रोगकारकों पर इन रसायनों का ऐच्छिक प्रभाव न पड़ने के कारण इनका नियंत्रण मुश्किल हो जाता है। इसके विपरीत *ट्राइकोडर्मा* रोगकारकों की वृद्धि पर अंकुश रखते हैं और पर्यावरण अनुकूलित स्वभाव के कारण जमीन में इनका कोई अवशेष नहीं रहता है। साथ ही साथ *ट्राइकोडर्मा* अनेक गतिविधियों के कारण पौधों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं। अतः ये रोग नियंत्रक मात्र ही नहीं, अपितु पौधें के वृद्धि वर्धक के रूप में भी जाने जाते हैं।

वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनेक शोध के अनुसार दलहनी फसलों में लगने वाले प्रमुख रोगों की रोकथाम के लिए *ट्राइकोडर्मा* का प्रयोग करने से उनमें लगने वाले रोगों में कमी आती है, साथ ही साथ उनके उपज में भी वृद्धि होती है। *ट्राइकोडर्मा* जैव नियंत्रक के अनेक *फारमुलेशन* को अरहर, चना, मसूर, मटर, लोबिया एवं मूँग, उर्द में अनेक प्रकार के रोगों के नियंत्रण के लिए प्रयोग किया गया जिसका सकारात्मक प्रभाव देखा गया।

ट्राइकोडर्मा क्या है?

- *ट्राइकोडर्मा* मृदा में उपस्थित एक कवक हैं।
- अत्यंत प्रभावी जैवनियंत्रक
- आसानी से उपलब्ध होने वाला
- पौधों के लिए नुकसानदायक नहीं
- अल्पकालिक प्रणालीगत
- सर्वव्यापी उपलब्धता

- तेजी से फैलने वाला
- पर्यावरण हितैषी
- किफायती
- सहक्रियाशीलता
- अधिक समय तक कार्य करने की शक्ति

मृदा में उपस्थित *ट्राइकोडर्मा* की प्रजातियां

ट्राइकोडर्मा की विशेषतायें

- *ट्राइकोडर्मा* विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकी में मौजूद रहता है।
- कृत्रिम संवर्धन में सरलता से उगाया जा सकता है।
- यह रोगकारक के शरीर से चिपक कर विभिन्न एंजाइमों को स्रावित करके उसकी बाहरी सतह को गला कर रोगकारक के जीवन को नष्ट कर देता है।
- भूमिजनित रोगों के विरूद्ध प्रतिरोधी स्पर्धा प्रदर्शित करता है।
- इसे आसानी से कृत्रिम तरीके से उगाया जा सकता है।

ट्राइकोडर्मा का उपयोग कैसे करें?

ट्राइकोडर्मा का प्रयोग सामान्यतया दलहनी फसलों में बीज व मृदाशोधन विधि से करते हैं। खेत में अधिक मात्रा में रोग होने की दशा में बुवाई पूर्व मृदा शोधन अनिवार्य हो जाता है। *ट्राइकोडर्मा* को बृहद स्तर पर बनाने के लिए सर्वप्रथम प्रयोगशाला में इसका मात्र संबर्धन कृत्रिम माध्यम अथवा ज्वार के दानों पर 8 से 10 दिन में तैयार करते हैं। इस प्रकार तैयार मात्र संवर्धन को मिक्सर से पीस कर पाउडर बना लेते हैं। तत्पश्चात एक कि.ग्रा. *टेल्कम पाउडर* में 5 ग्रा. *ट्राइकोडर्मा* का मात्र संवर्धन मिलाकर प्रयोग करते हैं। एक एकड़ खेत के लिए दो से तीन कि.ग्रा. *ट्राइकोडर्मा* की मात्रा पर्याप्त होती है।

(अ) बीज शोधन कैसे करें?

इस प्रक्रिया में बीज को उपचारित करके छाया में सुखाना चाहिए। बीज शोधन के लिए *ट्राइकोडर्मा* जैव नियंत्रक पाउडर को 5 से 10 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज के साथ मिलाकर इन बीजों को धूप से बचाकर छाया में सुखा लें। बीज शोधन की क्रिया बुआई के 24 घण्टे पूर्व करें।

भा.द.अनु.सं. द्वारा विकसित *ट्राइकोडर्मा फार्मूलेशन*

ब) मृदा शोधन कैसे करें?

- एक एकड़ खेत के लिए 100 कि. ग्रा. सड़ी गोबर की खाद लेकर उसकी ढेरी किसी छायादार स्थान में लगायें।
- खाद में उचित नमी (लगभग 25-35 प्रतिशत) होनी चाहिए।

- बुआई के 7-10 दिन पूर्व जैव नियंत्रक की उचित मात्रा समान रूप से भली-भांति खाद में मिलाएं।
- अब इस गोबर की खाद को जूट या टाट की बोरी से ढक दें जिससे वांछित नमी बनी रहे।
- बुआई यदि सीडड्रिल से कर रहे हैं तो अन्तिम जुताई के पूर्व खेत में समान रूप से *ट्राइकोडर्मा* पूर्ण खाद को बिखेरकर खेत की जुताई कर दें।

ट्राइकोडर्मा का दलहनी फसलों पर प्रभाव

- बीज का जमाव उत्तम होता है।

- पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ा कर पौधे की वृद्धि एवं उसमें रोग-प्रतिरोधक क्षमता का विकास करता है।
- खेत में रोग कारकों की संख्या व उनका फैलाव कम करता है।
- संक्रमित फसल अवशेषों से रोग कारकों को दूर करता है।
- रोग बीजाणुओं के अंकुरण एवं विकास का दमन करता है।
- कठोर रोगाणु संरचनाओं को नष्ट करता है।
- मूल परिवेश *(राइजोस्फीयर)* में रोग कारकों से प्रतिस्पर्धा करता है।
- मृदा में उपस्थिति लाभकारी जीवाणुओं को नष्ट नहीं करता।
- अगली फसल पर भी लाभकारी प्रभाव डालता है।
- पर्यावरण सौम्य है, अतः प्रदूषण नहीं करता।

ट्राइकोडर्मा दलहनी फसलों की बढ़वार में भी सहायक होता है

गेहूँ की उन्नत खेती

गेहूँ भारत की एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। वर्ष 2014-15 के दौरान भारत में गेहूँ का क्षेत्रफल 314.6 लाख हे. एवं उत्पादन 869 लाख टन किया गया। उत्तर प्रदेश में गेहूँ की खेती भारत के कुल गेहूँ क्षेत्रफल में 31.31 प्रतिशत (98.5 लाख हे.) हिस्सेदारी है। इसी तरह कुल उत्पादन 224.2 लाख टन एवं उत्पादकता 2277 कि.ग्रा./हे. है। भारत की खाद्य सुरक्षा एवं संप्रभुता की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का गेहूँ उत्पादन में अहम् स्थान है। यद्यपि इस प्रदेश में गेहूँ की उत्पादकता एवं उपज को और अधिक बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं। अतः किसानों को अधिक उपज एवं आय में वृद्धि हेतु वैज्ञानिक विधि से खेती करने की आवश्यकता है।

किस्मों का चयन

अच्छी पैदावार लेने के लिए अच्छी किस्मों का चुनाव करना बहुत जरूरी है। किसानों को अनुमोदित किस्मों को बुवाई के समय और उत्पादन स्थिति के हिसाब से लगाना चाहिए। समय से बुवाई वाली किस्मों को देरी की अवस्था में या देरी से बुवाई वाली किस्मों को समय से बोने पर उपज में कमी हो सकती है।

सिंचित क्षेत्र (समय पर बुवाई)

एच डी 2967, यू पी 2382, एच यू डब्ल्यू 468, एच डी 2888, एच डी 2733, के 307 (शताब्दी), डब्ल्यू एच 542, डब्ल्यू एच 1105, एच डी 2964, डी पी डब्ल्यू 621-50, पी बी डब्ल्यू 550, पी बी डब्ल्यू 17, पी बी डब्ल्यू 502, एच डी 2687, पी डी डब्ल्यू 314 (कठिया), पी डी डब्ल्यू 291 (कठिया), पी डी डब्ल्यू 233 (कठिया), एवं डब्ल्यू एच 896 (कठिया) के 1006 इत्यादि।

सिंचित क्षेत्र (देर से बुवाई)

पी बी डब्ल्यू 590, डब्ल्यू एच 1021, पी बी डब्ल्यू 16, पी बी डब्ल्यू 373, एच यू डब्ल्यू 510, के 9423, के 9423, (उन्नत हालना), के 424 (गोल्डन हालना), इत्यादि।

वर्षा आधारित, समय से बुवाई

पीबीडब्ल्यू 396, के 8962, के 9465, के 9351, एचडी 2888, मालवीय 533

ऊसर (लवणीय एवं क्षारीय) क्षेत्र हेतु (सिंचित क्षेत्र, समय पर बुवाई)

के आर एल 213, के आर एल 210, के आर एल 19, के 8434

तापमान, बीज की गहराई एवं पंक्ति की दूरी

बुवाई के लिए औसत तापमान 21-25 डिग्री सेंटिग्रेड की आवश्यकता होती है। अच्छे जमाव के लिए तापमान 16-20 डिग्री सेंटिग्रेड होना चाहिए। बीज की गहराई लगभग 5 से.मी. एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 22.5 से.मी. होनी चाहिए। देर से बोई गई गेहूँ में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 15-17.5 से.मी. तक होनी चाहिए। असिंचित क्षेत्र में पंक्ति की दूरी 25-30 सेमी. तक रखी जानी चाहिए।

उत्पादन स्थिति, बुवाई का समय तथा बीज दर

उत्पादन स्थिति	बुवाई का समय	बीज दर (कि.ग्रा./हे.)
सिंचित क्षेत्र, समय पर बुवाई	नवम्बर के प्रथम सप्ताह से नवंबर के अंतिम सप्ताह तक	100
सिंचित क्षेत्र, देर से बुवाई	दिसंबर के अंतिम सप्ताह तक	125
वर्षा आधारित क्षेत्र, समय पर बुवाई	अक्टूबर के द्वितीय पक्ष से नवम्बर के प्रथम पक्ष तक	125

बुवाई की विधि

आज भी कई किसान पारम्परिक विधि से बीज को छिटककर गेहूँ की बुवाई करते है जो कि गैर वैज्ञानिक तरीका है। इसी कारण निराई-गुडाई, खरपतवार नियंत्रण एवं अन्य सस्य क्रियाओं में बाधा आती है तथा पैदावार भी कम होती है इसके अतिरिक्त, विशेष परिस्थितियों में तथा आवश्यकतानुसार निम्नलिखित वैज्ञानिक तकनीक का उपयोग कर किसान फसल लागत में कमी ला सकते हैं।

सीड ड्रिल

सीड ड्रिल या *सीड कम फर्टि ड्रिल* द्वारा बुवाई करना एक सर्वोत्तम तरीका है। इसमें बीज को बीज पेटी में एवं उर्वरक को उर्वरक पेटी में डालकर दोनों कार्य (बीज बुवाई एवं उर्वरक प्रयोग) एक साथ कर सकते हैं। पंक्ति में बुवाई होती है

जिससे पौधों की संख्या उचित एवं एक समान रहती है जिससे लागत में कमी एवं पैदावार में वृद्धि होती है।

शून्य कर्षण *(जीरो टिलेज)*

गेहूँ की शून्य कर्षण बुवाई एक लाभदायक तकनीक है, जिसमें विशेष रूप से तैयार की गई बीज संग उर्वरक डालने वाली मशीन यानि *जीरो टिल फर्टि ड्रिल* का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति से गेहूँ की बुवाई धान की कटाई के बाद खेत की बिना जुताई किए ही की जाती है। इस विधि से गेहूँ की बुवाई लगभग 10 दिन पहले की जा सकती है तथा लगभग तीन से चार हजार रूपये प्रति हेक्टेयर की बचत होती है। इस विधि के अंगीकरण से किसान अनेक संसाधनों जैसे-समय, धन, श्रम, ईंधन, पोषक तत्व, पानी आदि की बचत कर सकता है। *जीरो टिलेज* से बोई गई गेहूँ में मंडूसी/गेहूँ का मामा/गेहूँसा, पाउडरी मिल्ड्यू (चूर्णिला आसिता) करनाल बंट एवं दीमक आदि का प्रकोप भी कम होता है।

बेड प्लांटर

इस विधि में *मल्टी क्रॉप बेड प्लांटर* द्वारा बुवाई उठी हुई शैय्या पर की जाती है। इस विधि में बीज, एवं उर्वरक का प्रयोग एक साथ किया जाता है। पानी की 25 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है।

टर्बो/हैप्पी सीडर

यह मशीन धान के खेतों में फसल अवशेषों के प्रबंधन के लिए विकसित की गई है। यह मशीन भी *रोटरी टिलेज* प्रणाली पर आधारित है। इस मशीन के आगे

लगे फलेल 1500 आर पी एम पर घूमते हैं तथा धान के पुआल/पराली के अवशेषों को काटकर मिट्टी में मिलाती है तथा पीछे लगी *ड्रिल* के माध्यम से बीज व खाद डाली जाती है। उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में किसान धान के फसल अवशेषों को जलाते हैं जिससे वायुमंडल प्रदूषित तो होता है। साथ ही ऊपरी सतह की नमी भी खत्म हो जाती है। फसल अवशेषों के जलाने से भूमि संरक्षण में बहुत ही उपयोगी कार्बनिक *(ऑर्गेनिक)* स्रोत भी नष्ट हो जाते हैं। अतः पराली या फसल अवशेष को जलाएं नहीं अपितु इसे खाद के रूप में प्रयोग करके मृदा स्वास्थ्य में सुधार करें। यह मशीन करीब एक घंटे में एक एकड़ खेत की बुवाई कर देती है।

रोटरी ड्रिल

इस तकनीक द्वारा गेहूँ की बुवाई *'रोटरी टिल ड्रिल'* से की जाती है। यह मशीन एक बार में ही खेत की तैयारी, खाद व बीज डालना तथा पाटा लगाना जैसी सस्य क्रियाएं करती है। इस तकनीक के अंगीकरण से समय, श्रम व डीजल की बचत होती है, साथ ही किसान अधिक उपज के साथ-साथ लगभग ढाई हजार रूपये प्रति हेक्टेयर तक की बचत कर सकते हैं। इस मशीन को चलाने के लिए कम से कम 45 अश्वशक्ति *(हार्स पावर)* के ट्रैक्टर की आवश्यकता होती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

सिंचित क्षेत्र, समय पर बुवाई

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना उचित है। संस्तुत मात्रा 150:60:40:30 कि.ग्रा. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश एवं गन्धक प्रति हैक्टर है। एक तिहाई नत्रजन तथा सम्पूर्ण फास्फोरस, पोटाश एवं गन्धक बुवाई के समय पर प्रयोग करें। एक तिहाई नत्रजन पहली सिंचाई पर तथा शेष हुई एक तिहाई नत्रजन दूसरी सिंचाई पर डालनी चाहिए।

सिंचित क्षेत्र, देर से बुवाई

नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश एवं गन्धक की संस्तुत मात्रा 120:60:40:20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर दें। एक तिहाई नत्रजन तथा सम्पूर्ण फॉस्फोरस, पोटाश एवं गन्धक बुवाई के समय, एक तिहाई नत्रजन पहली सिंचाई पर तथा शेष एक तिहाई नत्रजन दूसरी सिंचाई पर डालनी चाहिए।

वर्षा आधारित बुवाई

नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश एवं गन्धक की संस्तुत मात्रा 80:40:30:20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय ही डाल देनी चाहिए। अन्य पोषक तत्व मिट्टी की जांच के आधार पर प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई

सामान्यतः गेहूँ की फसल के लिए 3-6 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पानी की उपलब्धता एवं पौधों की आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। शीर्ष जड़ें निकलने *(क्राउन रूट इनिशियेशन)* एवं बाली बनते समय *(हेडिंग)* ऐसी क्राँन्तिक अवस्थाएं हैं जहां नमी की कमी का प्रतिकूल प्रभाव उत्पादन पर अधिक पड़ता है। अतः इन अवस्थाओं पर सिंचाई करना अनिवार्य होता है। अगर मार्च के शुरूआत में तापमान सामान्य से बढ़ने लगे तो हल्की सिंचाई देना लाभदायक है।

सिंचाई	सिंचाई का समय (बुवाई के बाद, दिनों में)
एक	21
दो	21, 85
तीन	21, 65, 105
चार	21, 45, 85, 105
पाँच	21, 45, 65, 85, 105
छः	21, 45, 65, 85, 105, 120

फव्वारा विधि द्वारा सिंचाई करने पर पानी की बचत होती है, अतः किसानों को फव्वारा विधि अपनानी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

गेंहूँ में प्रमुख रूप से संकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसेः मंडूसी/कनकी/गुल्ली डंडा, जंगली जई, पोआ घास, लोमड़ घास एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे बथुआ, खरथुआ, जंगली पालक, मैना, मैथा, सोंचल/मालवा, मकोय, हिरनखुरी, कंडाई, कृष्णनील, प्याजी, चटरी-मटरी इत्यादि पाये जाते हैं।

शाकनाशी	खरपतवार नियंत्रण	मात्रा / एकड़
क्लोडिनाफॉप* (टोपिक / पॉइंट / झटका)	संकरी पत्ती	160 ग्राम
पिनोक्साडेन* (एक्सिल 5 ई.सी.)	संकरी पत्ती	400 मि.ली.
फिनोक्साप्रॉप (प्युमा पॉवर)	संकरी पत्ती	400 मि.ली.
मैटसल्फ्यूरॉन* (एलग्रीप)	चौड़ी पत्ती	8 ग्राम
कारफेन्ट्राजोन* (एफीनीटि)	चौड़ी पत्ती	20 ग्राम
2,4–डी* (वीडमार)	चौड़ी पत्ती	500 मि.ली.
आईसोप्रोट्यूरॉन* (आईसोगार्ड 75 डब्ल्यू. पी.)	संकरी व चौड़ी पत्ती	500 ग्राम
सल्फोसल्फ्यूरॉन** (लीडर / एस.एफ. 10 / सफल	संकरी व चौड़ी पत्ती	13 ग्राम
सल्फोसल्फ्यूरॉन+मैटसल्फ्यूरॉन (टोटल** वेस्टा**)	संकरी व चौड़ी पत्ती	16 ग्राम
मिसोसल्फ्यूरॉन+आइडोसल्फ्यूरॉन (अटलांटिस*)	संकरी व चौड़ी पत्ती	160 ग्राम
फिनोक्साप्रॉप+मेट्रीब्यूजीन (एकार्ड प्लस*)	संकरी व चौड़ी पत्ती	500–600 मि.ली.
पेन्डीमैथालीन** (स्टॉम्प)	संकरी व चौड़ी पत्ती	1250–1500 मि.ली.

*बुवाई के 30-35 दिन के बाद, 120 लीटर / एकड़ पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
**बुवाई के 20-25 दिन के बाद (पहली सिंचाई से पहले) या बुवाई के 30-35 दिन बाद (सिंचाई के बाद) प्रयोग करें।
***बुवाई के 3 दिन तक 120-150 लीटर / एकड़ पानी में घोलकर छिड़काव करें।

ध्यान देने योग्य बिन्दु

- हमेशा खरपतवार रहित गेंहूँ के बीज का उपयोग करें।
- खरपतवारनाशी की सही मात्रा, सही समय व उपयुक्त तकनीक द्वारा छिड़काव करें।
- खरपतवारनाशी को अदल-बदल कर उपयोग में लाएं।
- फसल-चक्र में चारे वाली फसलें जैसे बरसीम, जई आदि का समायोजन अवश्य करें।
- उपयुक्त छिड़काव करने के लिए *फ्लैट फेन नोजल* का प्रयोग करें।

- मंडूसी का प्रभाव कम करने के लिए शून्य कर्षण *(जीरो टिलेज)* द्वारा अगेती बुवाई करें।
- शाकनाशी प्रतिरोधकता नियंत्रण के लिए ग्लाईफोसेट+पेन्डीमैथालीन का प्रयोग शून्य कर्षण द्वारा बुवाई से पूर्व करें।
- अधिक असर के लिए सल्फोसल्फ्यूरॉन या सल्फोसल्फ्यूरॉन+मैटसल्फ्यूरॉन को पहली सिंचाई से पहले उपयोग करें।
- जहाँ भी क्लोडिनाफॉप व सल्फोसल्फ्यूरॉन से प्रतिरोधकता आ गई है वहाँ पेन्डीमैथालीन, एकार्ड प्लस और पिनोक्साडेन का उपयोग करें।
- एकार्ड प्लस का प्रयोग पी बी डब्ल्यू 550 एवं डब्ल्यू एच 542 किस्मों में नहीं करें।
- क्लोडिनाफॉप/फिनोक्साप्रॉप/पिनोक्साडेन को 2, 4-डी के साथ नहीं मिलाएं, 2, 4-डी का छिड़काव पहले छिड़काव के एक सप्ताह के पश्चात करें।
- छिड़काव बुवाई के 30-35 दिन तक ही कर दें।
- खरपतवारनाशी की संस्तुत मात्रा से कम या अधिक मात्रा का प्रयोग नहीं करें।
- खरपतवार के बीज नहीं पनपने दें।

फसल सुरक्षा

बीजोपचार

किसान अधिकतर अपना ही बीज उगाते हैं या अपने साथी या संबंधी किसानों से लेते हैं। अतः बीज का उपचार अवश्य करना चाहिए। इसके लिए एक कि.ग्रा. बीज को कार्बोक्सिन (Carboxin) (विटावेक्स 75 डब्ल्यू.पी. 2.5 ग्राम) या टेबुकोनाजोल (Tebuconazole) (रैक्सिल 2 डी.एस. 1.0 ग्राम) या कार्बेन्डाजीम (Carbendazim) (बाविस्टीन 50 डब्ल्यू.पी. 2.5 ग्राम) या विटावेक्स (Vitavax) (75 डब्ल्यू.पी. 1.25 ग्राम) और बायोएजेन्ट कवक (*ट्राइकोडरमा विरिडी* 4 ग्राम) मिलाकर उपयोग करें। फफूंदीनाशकों द्वारा बुवाई से एक या दो दिन पहले बीजोपचार करना चाहिए। समन्वित प्रबंधन के अर्न्तगत बीज का उपचार *ट्राइकोडर्मा*

विरिडी द्वारा बुवाई के 72 घंटे पहले करने के साथ ही उसी बीज को फफूंदीनाशक से बुवाई के 24 घंटे पहले उपचारित करें। *ट्राइकोडर्मा विरिडी* से बीजोपचार करने से बीज अंकुरण भी अच्छा होता है तथा बाद की अवस्थाओं में रोगों से बचने की क्षमता भी बढ़ जाती है।

पीला रतुआ

पीला रतुआ तथा भूरा रतुआ गेंहूँ का एक मुख्य रोग हैं। पीला रतुआ से बहुत अधिक हानि हो सकती है। इसे रोग के प्रबंधन के लिए रोगरोधी प्रजातियाँ जैसे पी बी डब्ल्यू 550, एच डी 2967, डब्ल्यू एच 542, डब्ल्यू एच 896 इत्यादि को ही उगाना चाहिए। खेतों का निरीक्षण शुरू से ही बड़े ध्यान से करें, विशेषकर वृक्षों के आस-पास या पॉपलर वृक्षों के बीच उगाई गई फसल पर अधिक ध्यान दें। फसल पर इस रोग के लक्षण दिखने पर दवाई का छिड़काव करें। यह स्थिति प्रायः जनवरी के अन्त में या फरवरी के आरंभ में आती है, परन्तु रोग इस से पहले दिखाई दे तो एक छिड़काव कर दें। छिड़काव के लिए प्रॉपीकोनाजोल (Propiconazole) 25 ई.सी. (टिल्ट 25 ई.सी.) या टेबूकोनाजोल (Tebuconazole) 25 ई.सी. (फोलिकर 250 ई.सी.) या ट्राईडिमिफोन (Triadimefon) 25 डब्ल्यू पी (बेलिटॉन 25 डब्ल्यू. पी.) का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें। एक एकड़ खेत के लिये 200 मि.ली. दवा 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। पानी की उचित मात्रा का प्रयोग करें। फसल की छोटी अवस्था में पानी की मात्रा 100-120 लीटर प्रति एकड़ रखी जा सकती है। रोग के प्रकोप तथा फैलाव को देखते हुए दूसरा छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करें।

चूर्णिल आसिता

चूर्णिल आसिता या *'पाउडरी मिल्ड्यू'* के नियंत्रण हेतू प्रोपीकोनाजोल (टिल्ट 25 ई.सी.) 0.1 प्रतिशत का एक छिड़काव बाली निकलते समय बीमारी से प्रभावित क्षेत्रों में करना चाहिए। मेंड़ पर लगाए गए गेंहूँ में चूर्णिल आसिता की ज्यादा संभावना होती है। अतः समय पर रोग नियंत्रण के उचित उपाय किए जाने चाहिए।

यह बीमारी *'ब्लूमेरिया ग्रेमिनिस'* नामक फफूँद द्वारा फैलती है। सामान्यतः वायुमण्डलीय तापमान 10-22 डिग्री सेन्टिग्रेड एवं आर्द्रता 50-80 प्रतिशत होने पर यह रोग आता है। इसका प्रभाव बाली निकलते समय अधिक होता है।

करनाल बंट

यह रोग सक्रंमित मृदा तथा संक्रमित बीजों से नए क्षेत्रों में फैलता है। इस रोग से दानों के अन्दर काला चूर्ण बन जाता है तथा भ्रूण भाग भंग हो जाता है। दाना अन्दर से खोखला हो जाता है तथा अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। विश्व में गेंहूँ का आयात करने वाले कई देश, जहाँ पर यह रोग नहीं है, गेंहूँ को पूर्ण रूप से करनाल बंट मुक्त होने पर महत्व देते हैं। इस कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रभावित होता है। जिन क्षेत्रों में करनाल बंट कम आती हैं वहां कठिया (ड्यूरम) गेंहूँ की 2-3 वर्ष तक बुवाई करने से खेत करनालबंट रहित हो सकता हैं। *जीरो टिलेज* एवं न्यूनतम जुताई करके बुवाई करने से करनाल बंट का प्रकोप कम होता है। गेंहूँ में बाली निकलने वाली अवस्था में सिंचाई नहीं करें। फसल में करनाल बंट की रोकथाम के लिए प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी. (टिल्ट 50 ई.सी.) या टेबूकोनाजोल 25 ई.सी. (फोलिफर 250 ई.सी.) का 0.1 प्रतिशत घोल पानी में बनाकर मध्य फरवरी में छिड़काव करें। गेंहूँ की खरीदने वाली एवं संग्रह करने वाली एजेंसियों को गेंहूँ रोग वाले क्षेत्रों से रोगरहित क्षेत्रों में संग्रह नहीं करना चाहिए एवं गेंहूँ के सम्बंधित क्षेत्र का पूरा ब्यौरा रखना चाहिए। करनाल बंट रोगरोधी प्रजातियों में पी.बी.डब्ल्यू. 502, पी.बी.डब्ल्यू. 233 तथा डब्ल्यू.एच. 89 प्रमुख हैं।

माहू

फसल में चेपा या माहू नामक कीट का भी प्रकोप होता है। इस कीट का प्रकोप शुरू होते ही खेत के किनारों पर (3-5 मीटर पट्टी में) चारों ओर इमीडाक्लोप्रीड 200 एस.एल. (कॉनफीडोर 200 एस.एल. या हाई-इमिडा 17.8 एल. एल.) का 100 मि.ली. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। ऐसा करने से कीट के पनपने पर रोक लग जाती है तथा खेत के अन्दर मित्रकीट जैसे कि कोक्सीनीलीड बीटल, क्राइसोपा, सिरफिड मक्खी, इत्यादि पनपते है जो चेपा का भक्षण करके कीट के नियंत्रण में सहायक सिद्ध होते हैं।

दीमक

दीमक के प्रबंधन हेतु क्लोरपाईरिफॉस की 4.5 मि.ली. मात्रा से एक कि.ग्रा. बीज उपचारित करें। दीमक प्रभावित इलाकों में मेंड़ पर गेंहूँ की फसल पर विशेष ध्यान देना चाहिए। खड़ी फसल वाले खेतों में दीमक के उपचार हेतु कीटनाशक

द्वारा उपचारित मिट्टी का छिड़काव बुवाई के 15 दिन बाद करें। इसके लिए क्लोरपाईरिफॉस की 3 लीटर मात्रा एक हैक्टेयर के लिए समुचित है। इसे 20 कि.ग्रा. बालू या बारीक मिट्टी एवं 2-3 लीटर पानी मिलाकर खेत में भुरकने से दीमक का प्रकोप कम होता है।

चूहे

चूहों के नियंत्रण के लिए 3-4 ग्राम जिंक फॉस्फाईड (Zinc phosphide) को एक कि.ग्रा. आटा, थोड़ा सा गुड़ व तेल मिलाकर छोटी-छोटी गोली बना लें एवं इन गोलियों को चूहों के बिलों के पास रखें।

कटाई, मढ़ाई एवं भंडारण

जब दानों में लगभग 20 प्रतिशत नमी रह जाए तब फसल हाथ से कटाई के लिए उपयुक्त मानी जाती है। शीघ्र कटाई के लिए कम्बाइन हार्वेस्टर का प्रयोग करना चाहिए और दाने में नमी 14 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। फसल को पूरी तरह से पकने पर ही काटें तथा गेंहूँ का बंडल सावधानीपूर्वक बनाएं। अधिक सूखने पर दाने बिखरने का खतरा रहता है। फसल पकते ही सुबह में कटाई करें। अनाज को भण्डारण से पहले अच्छी तरह सुखा लें। इसके लिए अनाज को तारपीन अथवा प्लास्टिक की चादरों पर फैलाकर तेज धूप में अच्छी तरह सुखा लें ताकि दानों की नमी की मात्रा 12 प्रतिशत से कम हो जाए। भंडारण के लिए जी.आई. शीट की बनी बिन्स (कोठियां एवं साईलों) का प्रयोग करना चाहिए। अनाज की कीड़ों से रक्षा के लिए एल्यूमीनियम फॉस्फाइड की एक टिकिया लगभग 10 कुंतल गेंहूँ में रखनी चाहिए। जिससे गेंहूँ खराब नहीं होगा एवं भण्डारण में कीट नहीं लगेंगे।

मक्का की उन्नत खेती

भारत में मक्का की खेती आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, राजस्थान, उत्तर प्रदेश इत्यादि राज्यों में प्रमुख रूप से की जाती है। बिहार में जायद मक्का के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्रफल है। मक्का अब कार्न, पॉप कार्न, स्वीट कॉर्न, बेबी कॉर्न आदि रूप में प्रचलित है। विश्व के अनेक देशों में मक्का की खेती प्रचलित है जिनमें क्षेत्रफल एवं उत्पादन के हिसाब से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चीन और ब्राजील का विश्व में क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान है। मक्के का उपयोग हम दाने के लिए, जानवरों के चारे के लिए एवं मुर्गी के चारे के लिए उपयोग करते है।

जलवायु एवं भूमि : मक्का उष्ण एवं आर्द्र जलवायु की फसल है। इसके लिए ऐसी भूमि जहां पानी का निकास अच्छा हो, उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी : खेत की तैयारी के लिए पहली वर्षा होने के पश्चात जून माह में हेरो करने के बाद पाटा चला देना चाहिए। यदि गोबर के खाद का प्रयोग करना हो तो पूर्ण रूप से सड़ी हुई खाद अन्तिम जुताई के समय जमीन में मिला दें। रबी के मौसम में कल्टीवेटर से दो बार जुताई करने के उपरांत दो बार हैरो द्वारा जुताई करें।

मक्का बुवाई का समय

खरीफ - जून से जुलाई तक

रबी - अक्टूबर से नवम्बर तक

जायद - फरवरी से मार्च तक

मक्का की किस्म :- जायद ऋतु की प्रजातियां- डी.एम.आर.एच. 1301, डेकलाव 9108, पी. 1866, स्वरना (एनएमएच 589) कृष्णा (एनएमएच 360) राजा (एमएचएम 904) हिमालया।

संकर प्रजातियां : डी.एम. 10, पी.डी.एच. 03, मालवीय, पी.एम.एच. 6, सी.ओ.एच. (एम.) 7, सी.ओ.एच. (एम.) 8, एच.एम. 12, विवके मक्का हाइब्रिड 43 आदि।

कम्पोजिट प्रजातियां : नर्मदा मोती, जवाहर मक्का 216, चन्दन मक्का 1, 2 व 3, चन्दन सफेद मक्का 2, पूसा कम्जपोजिट 1, 2 व 3, माही कंचन, अरून, किरन,

जवाहर मक्का 8, 12 व 216, प्रभात, नवजोत, अम्बर, पूसा कम्पोजिट 3, 4 आदि।

विशिष्ट मक्का की उन्नत प्रजातियाँ

1. **उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का (क्यूपूपूपीएम):** एच.क्यू.पी.एम.1, एच.क्यू.पी.एम. 5 एवं शक्ति 1 (संकुल), रतन, पोटिना
2. **पाप कार्न :** वी.एल. पापकार्न, अम्बर, पर्ल एवं जवाहर
3. **बेबी कार्न:** एच.एम. 4 एवं वी.एल. बेबी कार्न 1
4. **मक्का:** मधुरप्रिया एवं एच.एस.सी. 1 (संकर)
5. **चारे हेतु :** अफ्रीकन टाल, जे. 1006, प्रताप चरी 6

बीज की मात्रा :- जायद ऋतु की प्रजातियों के लिए - 23-25 कि.ग्रा./हे.

संकर प्रजातियां : 20 से 25 कि.ग्रा./हे.

कम्पोजिट प्रजातियां : 15 से 20 कि.ग्रा./हे.

हरे चारे के लिए : 40 से 45 कि.ग्रा./हे.

बीजोपचार :- बीज को बोने से पूर्व किसी फंफूदनाशक दवा जैसे थीरम कार्बेन्डाजिम 2.5-3 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।

मक्का पौध प्रबंधन

शीघ्र पकने वाली :- कतार से कतार 60 से.मी., पौधे से पौधे 20 से.मी.

मध्यम/देरी से पकने वाली :- कतार से कतार 75 से.मी., पौधे से पौधे 25 से.मी.

हरे चारे के लिए :- कतार से कतार :- 40 से.मी., पौधे से पौधे 25 से.मी.

मक्का बुवाई का तरीका :- वर्षा प्रारंभ होने पर मक्का बोना चाहिए। सिंचाई का साधन हो तो 10 से 15 दिन पूर्व ही बुवाई करनी चाहिये इससे पैदावार में वृद्धि होती है। बीज की बुवाई मेंड़ के किनारे व ऊपर 3-5 से.मी. की गहराई पर करनी चाहिए। बुवाई के एक माह पश्चात मिट्टी चढ़ाने का कार्य करना चाहिए। बुवाई किसी भी विधि से की जाय परन्तु खेत में पौधों की संख्या 55-80 हजार/हेक्टेयर रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा

शीघ्र पकने वाली :- 80:50:30 (नत्रजन : फास्फोरस : पोटाश कि.ग्रा./हे.)

मध्यम पकने वाली :- 120:60:40 (नत्रजन : फास्फोरस : पोटाश कि.ग्रा./हे.)

देरी से पकने वाली :- 120:75:50 (नत्रजन : फास्फोरस : पोटाश कि.ग्रा./हे.)

भूमि की तैयारी करते समय 5 से 8 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद खेत में मिलाना चाहिए तथा भूमि परीक्षण उपरांत जहां जस्ते की कमी हो वहाँ 25 कि.ग्रा./हे. जिंक सल्फेट की मात्रा वर्षा से पूर्व अवश्य डालनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक देने की विधि

नत्रजन

एक तिहाई मात्रा बुवाई के समय (आधार खाद के रूप में)

एक तिहाई मात्रा लगभग एक माह बाद (*साइड ड्रेसिंग* के रूप में)

एक तिहाई मात्रा नरपुष्प (मझरी) आने से पहले

फास्फोरस व पोटाश :- इनकी पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज से 5 से.मी. नीचे डालना चाहिए। मिट्टी में इनकी गतिशीलता कम होने के कारण इनका निवेशन ऐसी जगह पर करना आवश्यक होता है जहां पौधों की जड़ें हों।

मक्का में निराई-गुड़ाई :- बोने के 15-20 दिन बाद डोरा चलाकर निराई-गुड़ाई करनी चाहिए या रसायनिक खरपतवारनाशी एट्राजीन का प्रयोग करना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण हेतु एट्राजीन या सीमाजीन की मात्रा 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हे. की दर से 500 लीटर पानी की दर से घोलकर बुवाई के दो दिन तक अथवा 15-20 दिन पश्चात कर सकते है। इसके उपरांत लगभग 25-30 दिन बाद मिट्टी चढ़ावें।

सिंचाई :- मक्का की फसल को पूरी फसल अवधि में लगभग 400-600 मि.मी. वर्षा की आवश्यकता होती है तथा इसकी सिंचाई की महत्वपूर्ण अवस्था पुष्पन और दाने भरने का समय हैं। इसके अलावा खेत से पानी की निकासी भी अतिआवश्यक है।

मक्का में कीट प्रबन्धन

1. मक्का का धब्बेदार तनाबेधक कीट :- इस कीट की इल्ली पौधे की जड़ को छोड़कर समस्त भागों को प्रभावित करती है। सर्वप्रथम इल्ली तने में छेद करती है तथा प्रभावित पौधे की पत्ती एवं तना दोनों को भी नुकसान करती है। इसके नुकसान से पौधा बौना हो जाता है एवं प्रभावित पौधों में दाने नहीं बनते हैं। प्रारंभिक अवस्था में *डेड हार्ट* (सूखा तना) बनता है एवं इसे पौधे के निचले स्थान की दुर्गंध से पहचाना जा सकता है।

2. गुलाबी तनाबेधक कीट :- इस कीट की इल्ली तने के मध्य भाग को नुकसान पहुंचाती है। फलस्वरूप मध्य तने से *डैड हार्ट* का निर्माण होता है। जिस पर दाने नहीं आते हैं।

तना बेधक कीट प्रबंधन हेतु निम्न उपाय करें

- फसल कटाई के समय खेत में गहरी जुताई करनी चाहिये जिससे पौधों के अवशेष व कीट की प्यूपा अवस्था नष्ट हो जाये।
- मक्का की कीट प्रतिरोधी प्रजातियों का उपयोग करना चाहिए।
- मक्का की बुआई मानसून की पहली वर्षा के बाद करना चाहिए।
- एक ही कीटनाशक का उपयोग बार-बार नहीं करना चाहिए।
- प्रकाश प्रपंच का उपयोग सायं 6:30 बजे से रात्रि 10:30 बजे तक करना चाहिए।
- मक्का फसल के बाद ऐसी फसल बुवाई करनी चाहिए जिसमें कीटव्याधि मक्का की फसल से भिन्न हो।
- जिन खेतों पर तना मक्खी, सफेद भृंग, दीमक एवं कटुवा इल्ली का प्रकोप प्रत्येक वर्ष दिखता है, वहाँ दानेदार दवा फोरेट 10 जी, को 10 कि.ग्रा./हे. की दर से बुवाई के समय बीज के नीचे डालें।
- तना छेदक के नियंत्रण के लिये अंकुरण के 15 दिनों बाद फसल पर क्विनालफॉस 25 ई.सी. का 800 मि.ली./हे. अथवा कार्बोरिल 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. का 1.2 कि.ग्रा./हे. की दर से छिड़काव करना चाहिए। इसके 15 दिनों बाद 8 कि.ग्रा. क्विनालफॉस 5 जी. अथवा फोरेट 10 जी. को 12 कि.ग्रा. रेत में मिलाकर एक हेक्टेयर खेत में पत्तों के गुच्छों में डालें।

(ख) मक्का में रोग प्रबंधन

1. *डाउनी मिल्ड्यू* :- बोने के 2-3 सप्ताह पश्चात यह रोग लगता है। सर्वप्रथम पर्णहरित का ह्रास होने से पत्तियों पर धारियां पड़ जाती हैं, प्रभावित हिस्से सफेद रूई जैसे नजर आने लगते हैं तथा पौधे की बढ़वार रूक जाती है।

उपचारः- डायथेन एम-45 नामक दवा को 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोलकर 3-4 छिड़काव करना चाहिए।

2. **पत्तियों का झुलसा रोग :-** पत्तियों पर लम्बी नाव के आकार के भूरे धब्बे बनते हैं। रोग नीचे की पत्तियों से बढ़कर ऊपर की पत्तियों पर फैलता है। नीचे की पत्तियां रोग द्वारा पूरी तरह सूख जाती हैं।

उपचारः- रोग के लक्षण दिखते ही जिनेब 0.12 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

3. तना सड़नः- पौधों की निचली गांठ से रोग संक्रमण प्रारंभ होता है तथा विगलन की स्थिति में निर्मित होती है एवं पौधे के सड़े भाग से गंध आने लगती है। पौधों की पत्तियां पीली होकर सूख जाती हैं व पौधे कमजोर होकर गिर जाते हैं।

उपचार- 150 ग्रा. केप्टान को 100 ली. पानी में घोलकर जड़ों पर डालना चाहिये।

मक्का की उपज

1. **शीघ्र पकने वाली :-** 50-60 कुन्तल/हेक्टेयर
2. **मध्यम पकने वाली :-** 60-65 कुन्तल/हेक्टेयर
3. **देरी से पकने वाली :-** 65-70 कुन्तल/हेक्टेयर

फसल की कटाई व मढ़ाई :- फसल अवधि पूर्ण होने के पश्चात अर्थात् चारे वाली फसल बोने के 60-65 दिन बाद, दाने वाली देशी किस्म बोने के 75-80 दिन बाद, व संकर एवं संकुल किस्म बोने के 90-115 दिन बाद तथा दाने में लगभग 25 प्रतिशत तक नमी होने पर कटाई करनी चाहिए। कटाई के बाद मक्का फसल में सबसे महत्वपूर्ण कार्य गहाई है। इसमें दाने निकालने के लिए सेलर का उपयोग किया जाता है। सेलर नहीं होने की अवस्था में साधारण थ्रेशर में सुधार कर मक्का की गहाई की जा सकती है। इसमें मक्के के भुट्टे के छिलके निकालने की

आवश्यकता नहीं है। भुट्टे सुखे होने पर थ्रेशर में डालकर गहाई की जा सकती है। साथ ही दाने टूटते भी नहीं है।

भण्डारण :- कटाई व गहाई के पश्चात प्राप्त दानों को धूप में अच्छी तरह सुखाकर भण्डारित करना चाहिए। यदि दानों का उपयोग बीज के लिये करना हो तो इन्हें इतना सुखा लें कि आर्द्रता करीब 12 प्रतिशत रहे। खाने के लिये दानों को बाँस से बने बण्डों में या टीन से बने ड्रमों में रखना चाहिए तथा 3 ग्राम वाली क्विकफास की एक गोली प्रति क्विंटल दानों के हिसाब से ड्रम या बण्डों में रखें। रखते समय क्विकफास की गोली को किसी पतले कपड़े में बाँधकर दानों के अन्दर डालें या एक ई.डी.बी. इंजेक्शन प्रति क्विंटल दानों के हिसाब से डालें। इंजेक्शन को चिमटी की सहायता से ड्रम में या बण्डों में आधी गहराई तक लें जाकर छोड़ दें और ढक्कन बन्द कर दें।

भिण्डी की वैज्ञानिक खेती

हमारे देश से निर्यात की जाने वाली हरी सब्जियों में भिण्डी का भी मुख्य स्थान है। इसे ग्रीष्म तथा वर्षा दोनों मौसम में हरे, मुलायम, स्वादिष्ट फलों के लिए उगाया जाता है। फलों का उपयोग सब्जी, सांभर व सूप में प्रमुख रूप से किया जाता है।

उपयोग एवं महत्व : भिण्डी के हरे मुलायम फलों का प्रयोग सब्जी के अलावा सूप, फ्राई तथा अन्य रूप में भी किया जाता है। इसका तना व जड़ का प्रयोग गुड़ बनाते समय रस को साफ करने में भी किया जाता है। इसके रेशे रस्सी बनाने में तथा डंठलों का प्रयोग कागज हेतु लुगदी बनाने में किया जाता है। कहीं-कहीं पर इसके बीजों से बने पाउडर का प्रयोग काफी के विकल्प के रूप में होता है। भिण्डी में विटामिन ए, सी, कैल्शियम एवं लोहा इत्यादि तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। भिण्डी में कैलोरी की मात्रा काफी कम होती है। अल्सर एवं मधुमेह रोग में भिण्डी का प्रयोग करना लाभप्रद पाया गया है।

भूमि एवं जलवायु : भिण्डी की फसल हेतु भुरभुरी, उपजाऊ, नम और अधिक जीवांश वाली दोमट भूमि अच्छी होती है। सफल उत्पादन के लिये जल निकास युक्त मिट्टी जिसका पी.एच. मान 6.0-6.8 हो, उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी : इसके लिए भूमि की पहले दो गहरी जुताई तथा इसके बाद 3-4 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से करते हैं। प्रत्येक जुताई करने के बाद पाटा अवश्य लगायें, जिससे ढेले टूट जाएं एवं भूमि समतल हो जाये। सुविधानुसार खेत में क्यारियाँ एवं सिंचाई की नालियाँ बनानी चाहिए तथा बुवाई से पूर्व खेत को खरपतवार रहित रखना चाहिए।

बीज एवं उन्नतशील प्रजातियाँ

वातावरण व बाजार में माँग के अनुकूल प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए। इसकी मुख्य प्रजातियाँ पूसा ए-4, परभनी क्रांति, पंजाब पद्मिनी, वर्षा उपहार, आजाद भिण्डी-1, पूसा सावनी, पूसा मखमली, हरभजन भिण्डी, हिसार उन्नत, सेलेक्शन-1, सेलेक्शन-2, अर्का अनामिका एवं अर्का अभय है।

आजाद भिण्डी-1 : पौधे 100 से 125 से.मी. ऊँचे, सीधे, बुवाई के 40 से 42 दिन

बाद फूल आते हैं, फलत अगेती, फल लम्बे एवं हरे, मध्यम, मैदानी एवं पहाड़ी हिस्सों में खेती के लिए उपयुक्त प्रजाति, औसत उपज 100 से 125 कु./हे., दोनों मौसम में बुवाई हेतु उपयुक्त।

आजाद भिण्डी-2 : अगेती प्रजाति, पौधे 100 से 125 से.मी. ऊँचे लम्बे, गर्मियों में बुवाई के 38 से 40 दिन बाद जबकि बरसात में 40 से 42 दिन बाद फूल आते हैं, फल हरे, औसत आकार के पतले फल जिनका अंतिम छोर छोटा, पीत शिरा रोग के प्रति अवरोधी, औसत उपज 110 से 140 कु./हे. हरे फल, गर्मी व बरसात दोनों मौसम के लिए उपयुक्त।

आजाद भिण्डी-3 : अगेती प्रजाति, पौधे 100 से 125 से.मी. ऊँचे व फल लाल मध्यम पतले, फल के अंतिम छोर की लम्बाई मध्यम, पीत शिरा रोग के प्रति अवरोधी, गर्मी में बुवाई के 38-40 दिन बाद जबकि बरसात में बुवाई के 40 से 42 दिन बाद फूल आते हैं, औसत उपज 125 से 150 कु./हे.।

आजाद भिण्डी-4 : पौधे 100 से 125 से.मी. ऊँचे, लम्बे हरे फल, आकार मध्यम, पतले, अंतिम सिरे की लम्बाई मध्यम, पत्ती का पर्णवृन्त रंगीन, खरीफ में बुवाई के 38 से 40 दिन बाद जबकि जायद में 36 से 38 दिन बाद फूल आते हैं, अगेती एवं उच्च उत्पादन क्षमता, पीत शिरा रोग अवरोधी यह प्रजाति दोनों मौसम में खेती हेतु उपयुक्त, औसत उपज 120 से 150 कु./हे.।

बीज की मात्रा : ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई के लिए 15-18 कि.ग्रा./हे. तथा वर्षाकालीन फसल की बुवाई के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज/हे. की आवश्यकता होती है।

बुवाई का समय : ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई 15 फरवरी से 15 मार्च के बीच तथा वर्षाकालीन फसल की बुवाई 15 जून से 15 जुलाई के मध्य करनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन भिण्डी में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. तथा वर्षाकाल में पंक्ति से पंक्ति 45 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 30 से.मी. रखते हैं।

बीज उपचार : बीज को 2.5 ग्रा. थीरम या कैप्टान से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से मिलाकर शोधित करते हैं।

खाद एवं उर्वरक : सामान्यतः भूमि में 15-20 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हे. की

दर से बुवाई के 15-20 दिन पहले मिलाकर मिट्टी को भुरभुरी कर दें। उसके बाद अंतिम जुताई के समय 30-40 कि.ग्रा. नत्रजन, 40-60 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 40-60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर मिट्टी में मिला देते हैं। 15-20 कि.ग्रा. नत्रजन बुवाई के 30 दिन और 60 दिन बाद दो बार खड़ी फसल में देना चाहिए।

सिंचाई : भिण्डी की फसल को बरसात में कम सिंचाई तथा गर्मी में प्रत्येक सप्ताह सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवारों की रोकथाम के लिए खरपतवारनाशक रसायन पेण्डीमिथेलीन 3.3 ली./हे. की दर से बुवाई के दूसरे दिन छिड़काव करते है।

फलों की तुड़ाई : जब पौधों पर फलियाँ खाने योग्य नरम हों तो उन्हें तोड़ लेना चाहिए। पौधे पर सभी फल एक साथ तैयार नहीं होते हैं। इसलिए फलियों की हर दिन तुड़ाई करते रहना चाहिए जिससे बाजार भाव अच्छा मिलता है।

उपजः ग्रीष्म व वर्षाकालीन फसल से क्रमशः 80-100 कु./हे. व 90-110 कु./हे. उपज प्राप्त होती है।

फसल सुरक्षा प्रबन्धन

प्रमुख हानिकारक कीट

सफेद मक्खी : सफेद मक्खी आकार में छोटी होती है। इसके शिशु एवं प्रौढ़ दोनों पत्तियों से रस चूसकर फसल को क्षति पहुँचाते हैं। कीट के आक्रमण से पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं तथा पौधों की वृद्धि कम होती है। सफेद मक्खी भिण्डी में पीत शिरा मौजेक रोग भी फैलाती है।

नियंत्रण : इमिडाक्लोप्रिड या डायमिथोएट की 1.25 ली. 600-800 ली. पानी में घोल कर प्रति हे. की दर से 2-3 छिड़काव करें।

हरा फुदका : यह तिकोने आकार के 2-3 मि.मी. लम्बे हरे-पीले रंग का कीट है जिनकी पीठ पर काले रंग के छोटे-छोटे धब्बे होते हैं। कीट के शिशु एवं प्रौढ़ पत्तियों की निचले समूह से रस चूसकर पौधों को कमजोर करते हैं जिससे पत्तियाँ पीली होकर किनारों से मुड़ने लगती हैं तथा अन्त में सूखकर गिर जाती हैं।

नियंत्रण

1. नियंत्रण हेतु ट्राइजोफॉस 1.25 ली. मात्रा का 600-700 लीटर पानी में घोल बना कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
2. डायमेथोएट की 2 मि.ली./लीटर पानी के घोल का प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

तनाव एवं फली छेदक

इस चित्तीदार सूड़ी के वयस्क कीट का सिर एवं वक्ष पीला रंग का होता है। कीट की सूड़ियां 15 मि.मी. लंबी कांटेदार एवं शरीर पर गहरे भूरे रंग की चित्तीदार धारियां होती हैं। सूड़ियां शुरू में पौधे के अग्र भाग में छेद कर अंदर घुस जाती हैं जिससे अग्रभाग मुरझाकर सूख जाता है। फलियाँ आने पर सूड़ियां छेद कर अंदर प्रवेश करके अंदर के पदार्थ को खाने लगती हैं।

नियंत्रण

- पौधे के अग्रभाग में मुरझाए भाग को तोड़कर नष्ट कर दें तथा ग्रसित फलों को भी हटा देना चाहिए।
- ट्राइजोफॉस की 1.25 लीटर को 600 से 700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से 2-3 छिड़काव 10-15 दिन के अंतराल पर करें।
- क्यूनालफॉस के 0.05 प्रतिशत के 2-3 छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करें।
- कीट अवरोधी प्रजातियां (ई.एम.एस. 8 व ए.ई. 76) बोयें।
- *ट्राइकोग्रामा किलोनिस* नामक कीट तना एवं फली छेदक के ऊपर परजीवी होते हैं जो उसके अंडों को नष्ट कर देते हैं इसलिए कीट के अंडों से बने 2-3 ट्राइकोकार्ड प्रति हेक्टेयर की दर से 10-15 दिन के अंतराल में फसल पर 3-4 बार बांधने से कीटों से जैविक विधि से नियन्त्रण होता है।
- अधिक प्रकोप होने पर रीवा 2.5 ई.सी. (लैम्बडासाइहेलोथ्रिन) का 1 लीटर 600-700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

जैसिड: जैसिड आकार में अत्यधिक छोटे तथा हरे रंग के होते हैं जो अधिक संख्या में सामूहिक रूप से कोमल पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिस कारण

पहले पत्ती पीली पड़कर ऊपर की ओर मुड़ने लगती है व बाद में पीली होने लगती है।

नियंत्रण : एसिटामिप्रिड 20 एस.पी. 100 ग्राम या इमिडाक्लोप्रिड या डायमेथोएट 1.25 लीटर में से किसी एक रसायन का प्रति हेक्टेयर की दर से कीटों पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15 दिनों के अंतराल पर पुनः छिड़काव करें।

प्रमुख हानिकारक रोग

चित्तपर्ण रोगः- यह सफेद मक्खी से फैलने वाला विषाणुजनित रोग हैं। रोगी पौधों की पत्तियों की शिराएं चमकीले पीले रंग में परिवर्तित होकर कुछ दिन बाद पीली होकर सूख जाती हैं। इसका असर वर्षाकालीन फसल पर अधिक होता है। रोगी पौधों में फल छोटे व कम रह जाते हैं। पौधों की वृद्धि कम हो जाती है।

नियंत्रण

1. रोगी पौधों को अविलंब उखाड़ कर जला दें।
2. डाइमेथोएट 1.25 ली. या इमिडाक्लोप्रिड 1.25 ली. का घोल 600-800 ली. पानी में बना कर प्रति हे. 2-3 छिड़काव 10-15 दिन के अन्तराल पर करें।
3. कीटरोधी प्रजातियों जैसे वर्षा उपहार, वी.आर.ओ. 6, पंजाब पदमिनी, अर्का अनामिका एवं हिसार उन्नत की बुवाई करें।

चूर्णिल आसिता *(पाउडरी मिल्ड्यू)*

यह कवकजनित रोग है जो *'इरीसाइफी सिकोरैसियरम'* नामक फफूँद के कारण होता है। पौधों की निचली पत्तियों एवं तने पर सफेद रंग के छोटे-छोटे धब्बे, जो बाद में बढ़कर सफेद पाउडर जैसे होकर पत्तियों की सतह पर परत जैसे दिखाई देते हैं। पत्तियाँ पीली पड़कर जमीन पर गिर जाती है।

नियंत्रण

1. 2 ग्राम कैराथेन या सल्फेस/ली. पानी का घोल बना कर फसल पर 2-3 छिड़काव करना चाहिए।

उकठा रोग

यह फफूंदीजनित रोग है जो *फ्यूजेरियम* नामक फफूंदी से उत्पन्न होता है

एवं वर्षाकालीन फसल पर अधिक लगता है। रोगी पौधों की पत्तियां मुरझा जाती हैं तथा जड़ें सूखने लगती हैं। रोगी पौधे की पत्तियाँ मुरझा जाती हैं। पौधा उखाड़कर देखने पर तने के आधार व जड़ों पर काली धारियां दिखाई देती हैं।

नियंत्रण

- गर्मी में गहरी जुताई करें तथा बोने हेतु रोग अवरोधी प्रजातियों का चुनाव करें।
- कार्बेन्डाजिम 2.0 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार कर बुवाई करें।
- रोगग्रस्त फसल में कैप्टान 2 ग्राम व 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम का प्रति लीटर पानी में घोल बना कर फसल पर ड्रेंचिंग करें।

पत्तियों का धब्बा रोग

यह रोग सर्कोस्पोरा नामक फफूदी की प्रजाति से पत्तियों पर फैलता है। पत्तियों की सतह पर भूरे रंग के गोल या अंडाकार छोटे आकार के धब्बे बनते हैं, जो बाद में बड़े होकर पूरी पत्तियों पर फैल जाते हैं। पत्तियां सिकुड़कर गिरने लगती हैं तथा पौधों पर फूल एवं फल कम आते हैं।

नियंत्रण

मैंकोजेब 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर 2-3 छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 10-15 दिन के अंतराल पर पुनः छिड़काव करें।

सूत्रकृमि

यह *मेलाइडोगाइनी* नामक सूत्रकृमि की कई प्रजातियों द्वारा होता है। पौधों की जड़ों में गांठ पड़ जाती है जिनमें सूत्रकृमि पाए जाते हैं। सूत्रकृमि से ग्रसित पौधों की वृद्धि रूक जाती है और बौने रह जाते हैं। उपज में कमी आती है।

नियंत्रण

- सूत्रकृमि से ग्रसित भूमि में बुवाई से पूर्व 25 कि.ग्रा. फयूराडान (कार्बोसल्फान)/हे. भूमि में मिलाएं।
- खेत में भिण्डी की चार कतारों के बाद गेंदा की एक कतार लगाने से इसका प्रकोप नहीं होता है।

कद्दूवर्गीय सब्जियों की उत्पादन तकनीक

कद्दूवर्गीय सब्जियाँ *कुकुरबिटेसी* कुल के अंतर्गत आती हैं। सब्जियों में कद्दूवर्गीय सब्जियां अपना विशेष स्थान रखती हैं। इनकी उपलब्धता वर्ष में लगभग 8-10 महीने रहती है। आर्थिक दृष्टिकोण से इनकी महत्ता अधिक है। इनका प्रयोग सलाद (खीरा, ककड़ी); पकाकर सब्जियों के रूप में लौकी, नेनुआ, तरोई, करेला, काशीफल, परवल, कूंदरू चिचिन्डा, छप्पन कद्दू; मीठे फल के रूप में तरबूज, खरबूजा; मिठाई बनाने में पेठा, परवल, लौकी; अचार बनाने में करेला आदि का प्रयोग किया जाता है। इन सब सब्जियों की खेती में कुछ बातें सामान्य हैं जो नीचे दी गई हैं इसके अतिरिक्त सभी की विस्तृत तकनीक विवरण नीचे दी गयी है।

जलवायु

मुख्य रूप से कद्दूवर्गीय सब्जियां गर्म जलवायु की फसलें हैं। इनमें ज्यादा ठंड और पाला सहन करने की क्षमता नहीं होती है। इनकी खेती के लिए सर्वाधिक तापमान 40 डिग्री सेल्सियस और न्यूनतम 20 डिग्री सेल्सियस है। आदर्श तापक्रम 20 से 35 डिग्री सेल्सियस है। तरबूज और खरबूज के लिए आदर्श तापमान 30-35 डिग्री सेल्सियस है। तरबूज में पछुआ हवा तथा तापक्रम अधिकतम होने पर मिठास अच्छी होती है।

भूमि और भूमि की तैयारी

कद्दूवर्गीय सब्जियों के लिए बलुई दोमट या दोमट भूमि जिसमें जल निकास का उत्तम प्रबंध हो, उपयुक्त मानी जाती है। इसकी खेती नदियों के किनारे भी की जाती है। मृदा का पी.एच. मान 6 से 7 अच्छा माना गया हैं। खेत की 3-4 जुताई करके नली व थाले बना लेते हैं। जिससे बीजों की बुवाई करते हैं। बीज की बुवाई खेत में नमी की पर्याप्त मात्रा रहने पर ही करनी चाहिए जिससे बीज का अंकुरण एवं वृद्धि अच्छी प्रकार से हो।

खाद एवं उर्वरक

कम्पोस्ट का गोबर की सड़ी खाद का 20 से 25 टन प्रति हेक्टेयर की दर

से बीज बोने के 3 से 4 सप्ताह पहले भूमि तैयार करते समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला देते हैं। इसके अलावा 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस और 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता पड़ती है। फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा एक तिहाई नाइट्रोजन की मात्रा आपस में मिलाकर नालियों के स्थान पर डालकर मिट्टी में मिला दें और थाले बनाएं। शेष नाइट्रोजन दो बराबर भागों में बाँटकर बुवाई के लगभग 20 से 25 दिन बाद नालियों में *टापड्रेसिंग* करें और गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ाएं और दूसरी मात्रा पौधों की बढ़वार के समय में (40 से 50 दिन बाद) लगभग फूल निकलने के पहले *टापड्रेसिंग* के रूप में दें। यूरिया का पर्णीय छिड़काव (5 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी) करना लाभदायक होता है।

खरपतवार नियंत्रण एवं अंतर्सस्य क्रियाएं

जरूरत के अनुसार निकाई-गुड़ाई करते हैं। पौधों का पूर्ण विकास हो जाने पर खरपतवारों का कुप्रभाव फसल पर नहीं पड़ता। व्यावसायिक स्तर पर खेती के लिए स्टांप 3.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 1,000 लीटर पानी में घोलकर जमीन के ऊपर बुवाई के 24 घंटे के भीतर छिड़काव करें। इससे बुवाई के लगभग 30 से 40 दिन तक खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है। बुवाई के लगभग 30 से 35 दिन बाद नालियों या थाले की गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा देते हैं।

सिंचाई

वर्षाकालीन फसल के लिए पानी की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती है। केवल आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई की जाती है। औसतन गर्मी की फसल को 3-4 दिन तथा जाड़ें की फसल को 10-15 दिन तक पानी देना चाहिए। यदि आवश्यकता से ज्यादा पानी हो तो खेत से पानी निकाल देते हैं। खरबूज और तरबूज की फसल में फलों की बढ़वार होने के बाद पानी नहीं देना चाहिए, अन्यथा मिठास में कमी हो जाती है।

पौधों को सहारा देना

ग्रीष्मकालीन कद्दूवर्गीय सब्जी में साधारणतया सहारा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। लेकिन वर्षाकालीन फसल में पौधों को किसी माध्यम या अन्य से सहारा देने पर उसकी बढ़वार और उपज पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

लौकी

एक अत्यंत ही प्रचलित सब्जी है। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसकी खेती जायद खरीफ दोनों ऋतुओं में की जाती है। इसकी उपलब्धता लगभग पूरे वर्ष रहती है। सब्जी के अलावा इसके कच्चे फलों से रायता, कोफ्ता, अचार, हलवा, खीर इत्यादि स्वादिष्ट व्यंजन बनाए जाते हैं। यह कब्ज को दूर करने में अत्यधिक लाभकारी है। बीज से प्राप्त तेल सिर दर्द में राहत देता है।

स्वर्ण श्वेता- इसके फल मध्यम आकार के ठोस होते हैं इसकी उपज 250-300 कुंतल प्रति हेक्टेयर होती है।

स्वर्ण अगेती- इसके फल मध्यम आकार के ठोस होते हैं इसके उपज 300-350 कुंतल प्रति हेक्टेयर होती है।

प्वाइनसेट- इसके फल गाढ़े हरे 20-25 सेंटीमीटर लंबे तथा बेलनाकार औसतन 200-250 ग्राम वजन के होते हैं। प्रति पौधा 15-20 फल लगते हैं इस प्रजाति में मृतरोमिंग आसिता, चूर्णिल आसिता, एंथ्रेकनोज एवं कोणीय पत्ती धब्बे जैसे रोगों का प्रकोप नहीं होता है। प्रति हेक्टेयर लगभग 150 से 200 कुंटल उपज प्राप्त होती है।

संकर प्रजातियाँ

अमन (प्रो एग्रो पी जी एस). प्रिया (इंडो-अमेरिकन)

बोने का समय

ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई फरवरी से मार्च एवं बरसात की फसल की बुवाई जून-जुलाई में करते हैं।

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर बुवाई के लिए 5-6 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बीज शोधन

बीज को शोधन करने के लिए थिरम या कैप्टान दवा की 3 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज के लिए पर्याप्त होती है। दवा को बीज में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

बीज की बुवाई

खेत में कतार से कतार 1.5-2 मीटर के अंतर पर 30 सेंटीमीटर चौड़ी नाली बना लेते हैं। इस नाली के दोनों किनारे (मेड़ों) पर 33-45 सेंटीमीटर की दूरी पर बीज की बुवाई करते हैं। एक जगह पर 2 बीज को लगाते हैं। बीज जमने के बाद एक पौधा निकाल देते हैं। नालियों की आवश्यकतानुसार सिंचाई करते हैं।

फलों की तुड़ाई

जब फल कोमल एवं मुलायम हो तभी तोड़ लेना चाहिए। फलों की तुड़ाई 4-5 दिन के अंतराल पर करते रहना चाहिए।

उपज

इसकी औसत उपज लगभग 150 कुन्तल प्रति हैक्टेयर होती है।

चिकनी तोरी

चिकनी तोरी या नेनुआ की खेती प्रायः गाँवों में घर-घर में होती है। जब फल मुलायम एवं कोमल हो तभी उपयोग में लाया जाता है। इसके सूखे हुए फल के स्पंजयुक्त भाग को स्नान के लिए, बर्तनों को साफ करने के लिए एवं कारखानों में उत्पादित पदार्थ को पैक करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसके बीज से तेल भी निकाला जाता है।

उन्नतशील किस्में

अधिकतर चिकनी तोरी की स्थानीय किस्में बुवाई के काम में लाई जाती हैं। कुछ लता किस्मों का विवरण निम्नवत है :

पूसा चिकनी- यह अगेती प्रजाति है जिसमें बुवाई के 45 दिन बाद फल आना प्रारंभ होते हैं। यह गर्मी एवं वर्षा दोनों ऋतुओं में आसानी से उगाई जा सकती है। इसके फल चिकने, गाढें हरे रंग के बेलनाकार होते हैं। यह बेल पर 15 से 20 घंटे लगते हैं। इसकी औसत अनुपात 200 से 250 कुंतल प्रति हेक्टेयर है।

पूसा सुप्रिया- यह अगेती किस्म है जिसकी खेती गर्मी एवं वर्षा दोनों ऋतुओं में की जा सकती है फल हरे रंग के और मध्यम लम्बाई के होते हैं।

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर खेत की बुआई के लिए 5-6 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है।

बीज बोने का समय

चिकनी तोरी की बुवाई प्रायः दो मौसमों में की जाती है। ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई फरवरी-मार्च और वर्षाकालीन फसल की बुवाई जून-जुलाई में करते हैं।

बीज की बुवाई

इसकी बुवाई के लिए 2.5-3.0 मीटर की दूरी पर 45-50 सेंटीमीटर चौड़ी तथा 20 से 30 सेंटीमीटर गहरी नालियां बनानी चाहिए। बनी हुई नालियों (मेड़ों) पर 50-60 सेंटीमीटर की दूरी पर दोनों तरफ बीज की बुवाई करते हैं। एक स्थान पर 2.0 बीज 2.5 से 3.0 सेंटीमीटर की गहराई पर लगाते हैं।

फलों की तुड़ाई

फलों की तुड़ाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। फलों की तुड़ाई में थोड़ी सी भी देरी होने पर फलों के गुणों में कमी आ जाती है। और फल का अच्छा मूल्य नहीं मिल पाता। फलों की छोटी एवं कोमल अवस्था में तुड़ाई करते रहने से फल लगने की प्रक्रिया काफी दिनों तक चलती रहती है। फलतः उपज व लाभ दोनों अधिक होते हैं।

उपज

चिकनी तोरी की औसत उपज 150 से 200 कुंतल प्रति हेक्टेयर होती है।

कद्दूवर्गीय सब्जी में एकीकृत कीट प्रबंधन

लाल कद्दू भृंग

यह कीट तेज चमकीला नारंगी रंग का होता है। आकार में लगभग 7 मि.मी. लंबा और 4.5 मि.मी. चौड़ा होता है इसके सिर, वक्ष उदर का निचला भाग काला होता है। इस कीट का भृंग पीलापन लिए सफेद होता है। इसका सिर हल्का भूरा होता है। भृंग के पूर्ण रूप से विकसित होने पर इसकी लंबाई 12 मि.मी. होती है और इसकी चौड़ाई 3.5-4 मि.मी. होती है।

इस कीट के भृंग और वयस्क दोनों नुकसान पहुंचाते हैं। वह जमीन के नीचे रहते हैं और पौधों की जड़ों एवं तनों में छेद कर देते हैं। आमतौर पर इसके प्रौढ़ पौधों की छोटी पत्तियों को ज्यादा पसंद करते हैं और इन्हें खाते हैं इस कीट का आक्रमण फरवरी माह से लेकर अक्टूबर तक होता है। अंकुरण के पश्चात बीज पत्रक से लेकर 4-4 पत्ती अवस्था की पौध का इस कीट से बहुत नुकसान होता है।

नियंत्रण

नियंत्रण गर्मी में खेत की गहरी जुताई करना चाहिए जिससे इस कीट के अंडे ऊपर आ जाएं और तेज गर्मी से मर जाएं। प्रथम अवस्था में जब कम प्रकोप रहता है, वयस्क को हाथ से पकड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

कारपबोरल (सेविन) 50 डब्लू.पी. ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए या 5 प्रतिशत सेविन पाउडर को 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से राख में मिलाकर (1:1) भूरकाव करने से इस कीट का नियंत्रण हो जाता है।

फल मक्खी

मक्खी का रंग लाल भूरा होता है। इसके सिर पर काला तथा सफेद धब्बा पाया जाता है। वक्ष पर हरापन लिए हुए पीले रंग की लंबाकार मुड़ी हुई धारियां होती है। मादा का उदर शंख्वाकार और नर का गोलाकार होता है। मक्की के पंख पारदर्शी होते हैं। पिछले पंख हाल्टिर में बदल जाते हैं। करेला, टिंडा, तरोई, लौकी,

खरबूजा, तरबूज, आदि सब्जियों कोयह मक्खी क्षति पहुंचाती है। मादा मक्खी फल के छिलके में बारीक छेद कर देती है और अंडों में मैग्नेट (लार्वा) निकलकर फलों के अंदर का खा कर नष्ट कर देते है यह कीट फल के जिस भाग पर छेद करके अण्डा देता है वहां से टेढ़ा होकर सड़ जाता है। इस कीट से ग्रसित फल संपूर्ण रूप से सड़ जाता है।

नियंत्रण

क्षतिग्रस्त फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए।

20 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. + 200 ग्राम चीनी और गुड़ को 20 लीटर पानी में मिलाकर कुछ चुने हुए पौधों पर छिड़काव करना चाहिए जिससे इनके वयस्क आकर्षित होकर आते हैं एवं मर जाते हैं।

0.1 प्रतिशत कारबारिल (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) या 0.05 प्रतिशत फेनाथियान (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) का छिड़काव फायदेमंद है लेकिन रासायनिक दवा का छिड़काव फल तोड़कर ही करना चाहिए।

चूर्णी फफूँद (चूर्णील आसिता)

लक्षण- यह विशेष रूप से जाड़े वाली लौकी, कुम्हड़ा पर लगने वाले सामान्य रोग है। प्रथम लक्षण पत्तियों और तनों की सतह पर सफेद या धुंधले धूसर धब्बे के रूप में दिखाई देता है। कुछ दिन के बाद वे धब्बे चूर्णयुक्त हो जाते हैं। सफेद चूर्ण पदार्थ अंत में समूचे पौधे की सतह को ढक लेता है। उग्र आक्रमण के कारण पौधे की असमय ही नियंत्रण हो जाता है। इसके कारण फलों का आकार छोटा रह जाता है।

इस रोग की रोकथाम के लिए निम्न उपाय करना चाहिए-

प्रबंधन

रोगग्रसित फसल के अवशेष इकट्ठा करके खेत में ही जला देना चाहिए। बोने के लिए रोगरोधी किस्मों का चयन करें। फफूंदीनाशक दवा जैसे कैलिक्सीन आधा मि.ली. दवा 1 लीटर पानी में घोल का घोल बनाकर 7 दिन के अंतराल पर छिड़काव

करें। इस दवा के उपलब्ध न होने पर पेन्कोनाजोल 1 मि.ली. दवा 4 लीटर पानी में घोलकर बनाकर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

मृदुरोमिल आसिता

लक्षण- यह रोग मुख्यतः खीरा, परवल, खरबूजा और करेला में पाया जाता है। रोग वर्षा ऋतु के उपरांत जब तापमान 20-25 डिग्री सेंटीग्रेड होता है, तेजी से फैलता है। उत्तर भारत में इस रोग का प्रकोप अधिक है। इस रोग में पत्तियों पर कोणीय धब्बे बनते हैं, जो शिराओं द्वारा सीमित होते हैं। ये पत्ती के ऊपरी पृष्ठ पर पीले रंग के होते हैं। अधिक आर्द्रता की उपस्थिति में पत्ती की निचली सतह पर मृदुरोमिल कवक की वृद्धि अधिक दिखाई देती है।

प्रबंधन

बोने के लिए रोग अवरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए। बीजों को एप्रोन नामक कवकनाशी से 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) घोल का छिड़काव करें। पूरी तरह रोगग्रसित लताओं को निकाल कर जला देना चाहिए। रोगरहित बीज उत्पादन करने के लिए गर्मी की फसल से बीज उत्पादन करें।

मूलग्रंथि रोग

लक्षण- यह रोग गोलगति (सूत्रकृमि) के जड़ों पर आक्रमण से होता है। यह मुख्यतया कद्दू कुल के पौधों परवल, कुम्हणा, तरबूज, में बहुत अधिक पाया जाता है। इसके संक्रमण से पौधों का विकास रूक जाता है। पत्तियां पीले रंग की हो जाती हैं। मुख्य तथा पार्श्व पर गोलकार ग्रंथियां बन जाती हैं। रोगग्रसित पौधों में फल बहुत कम लगते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए रासायनिक दवाओं का उपयोग कम खर्चीला पड़ता है। अतः निम्न उपाय करना चाहिए :-

प्रबंधन

गर्मी की जुताई करें तथा साथ में एक बार सिंचाई करके पुनः गर्मी में ही जुताई करें। रोग प्रतिरोधी प्रजातियों को लगाना चाहिए। धान के साथ इन सब्जियों का फसल चक्र अपनाना चाहिए। टमाटर, बैगन, मिर्चा का फसल चक्र में समावेश न करें। खेत में एक साल गेंदा की खेती करें। खेत में 25 कुंतल की दर

से नीम की खली या अरंडी की खली मिलानी चाहिए। मिट्टी में बहुत अधिक सूत्रकृमि का प्रकोप हो जाने पर नेमोगोम नामक दवा 12 लीटर प्रति हेक्टेयर मृदा धूमक के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

ग्लानि रोग एवं जड़ विगलन रोग

लक्षण- यह रोग आमतौर पर खीरा व खरबूज में पाया जाता है। बीज पत्र सूखने लगते हैं। बीज पत्र तथा नए पत्ते हल्के पीले होकर मरने लगते हैं। रोगग्रसित पत्तियों एवं पूरा पौधा मुरझा जाता है। नई पौध का तना अंदर की तरफ भूरा होकर सिकुड़ने लगता है, पौधों की जड़ें सड़ जाती है जिसके कारण पौधा धीरे-धीरे सूख जाता है।

प्रबंधन

गर्मी में खेत की जुताई करें तथा हरी खाद का प्रयोग करके ट्राइकोडर्मा 3-5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालें। रोगग्रस्त पौधों को खेत से निकालकर जला देना चाहिए। बीज को कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। धान एवं मक्का के साथ 4 साल तक एक फसल चक्र अपनाना चाहिए।

फल विगलन रोग

लक्षण- यह रोग प्रत्येक स्थान तथा प्रत्येक क्षेत्र में पाया जाता है। मुख्य रूप से घीयातोरी, चिचिण्डा, परवल, लौकी एवं करेला के फलों पर कवक की अत्यधिक वृद्धि हो जाने से फल सड़ने लगते हैं। धरातल पर पड़े फलों पर यह हरे रंग का हो जाता है। यह वायुमंडल में सड़े हुए भाग पर जूही के समान घने कवक जाल विकसित हो जाते हैं भंडारण और परिवहन के समय भी फलों में यह रोग फैलता है।

प्रबंधन- खेत की गर्मी में जुताई करें तथा हरी खाद का प्रयोग करें। ट्राइकोडर्मा 5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डाल खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था करें। फल को भूमि के स्पर्श से बचाने का प्रयत्न करें। यह उलट-पलट करके करना चाहिए। भंडारण एवं परिवहन के समय में परिवहन के साधनों को चोट लगने से बचाव तथा हवादार एवं खुली जगह पर रखें।

कुक्कुट पालन

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पर लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और उनके जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत कृषि एवं पशुपालन है। मनुष्य के आर्थिक एवं सामाजिक विकास का होना नितान्त आवश्यक है और इसके विकास मे मुर्गी पालन की अहम भूमिका है। देश में मुर्गी पालन का व्यवसाय लगातार तेजी से बढ़ता जा रहा है। छोटे गाँव से लेकर महानगरों तक इसकी माँग में लगातार वृद्धि जारी है। इसका सहज अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले कुछ सालों में मुर्गी पालन व्यवसाय ने बहुत तेजी से गति पकड़ी है। चिकन उत्पादन लगभग 8 से 10 प्रतिशत हर साल की दर से बढ़ रहा है। इस व्यवसाय में अच्छा मुनाफा कमाने के लिये जरूरी है कि आपको इससे संबंधित तकनीकी जानकारी अच्छी तरह से हो, जैसे कि मुर्गी के लिये बाड़ा बनाना, नस्ल की जानकारी, खाना खिलाना और रख-रखाव। ब्रायलर यानी चिकन जिसका जन्म के समय 40 ग्राम वजन होता है। दस सप्ताह के अन्दर ही चिकन का वजन 40 ग्राम से बढ़कर करीब डेढ़ से दो किलो तक हो जाता है। स्थानीय बाजार में संकर ब्रायलर चूजों की उपलब्धता मुख्यतौर पर मांस के लिए ब्रायलर का धंधा किया जाता है और इसके भी दो प्रकार हैं- पहला भारत मे कॉमर्शियल ब्रायलर नस्ल- केरिब्रो, बाबकॉब, कृषिब्रो, कलर ब्रायलर, हाई ब्रो, वेनकॉब। दोहरी उपयोगिता वाला ब्रायलर नस्ल-क्रायलर डुयूअल, रोड आयरलैंड, रेड बनराजा, ग्राम प्रिया। मुर्गी पालन की कुछ अपनी अहम विशेषताएं है जिसके लिए उसकी पहचान बनी हुई है।

1. कम समय मे अपनी संतति उत्पादन की क्षमता

2. कम समय में शारीरिक वृद्धि

3. आहार उत्पादन क्षमता

उपरोक्त लिखित विशेषताओं के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के छोटे व बड़े कुक्कुट पालकों का कम समय में अधिक आमदनी एवं अपना रोजगार करने का सुलभ एवं आसान अवसर प्रदान करता है। प्रदेश में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष 22 अण्डे व 300 ग्राम कुल माँस की उपलब्धता है, जिसमें कुक्कुट से 5 अण्डे व 100 ग्राम माँस है। इस कारण लगभग 100 लाख अण्डे व 972 लाख एक दिवसीय ब्रायलर चूजें प्रतिदिन दूसरे प्रदेशों से आयात करना पड़ता है। ब्रायलर पालन के व्यवसाय में कम लागत एवं कम समय में अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए 100, 200, 500, 1000 पक्षियों की योजना बना सकते है।

मुर्गी पालन के लिए आवास- चिकन या चूजें की अच्छी बढ़त एवं पर्याप्त वजन की बढ़वार के लिए अच्छे एवं आरामदायक शेड का होना बहुत जरूरी है जिसके लिए कुछ खास बातों पर ध्यान देना आवश्यक है जो निम्न है-

1. जगह का चुनाव- पर्याप्त जगह की व्यवस्था, पानी की बेहतर आपूर्ति और बिजली की व्यवस्था, ऊँची जगह का चुनाव ताकि बरसात के दिनों में जल भराव न हो सके, वाहनों के आने-जाने की अच्छी व्यवस्था के साथ मुख्य सड़क मार्ग से संपर्क हो, रिहायसी इलाके से दूर हो, माल की खपत के लिए सीधे बाजार से संपर्क हो।

2. आवास या शेड की डिजाइन- शेड में हवा के आने-जाने की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। डीप लीटर सिस्टम में प्रति चूजा एक वर्ग फीट की जगह हो। लम्बाई में शेड की दिशा पूर्व-पश्चिम होनी चाहिए।

3. आवास या शेड व्यवस्था- जहाँ तक सम्भव हो मुर्गी पालन के लिए आवास की व्यवस्था सस्ते में करें ताकि बची हुई रकम का उपयोग उसके चारे दाने एवं दूसरे सामान खरीदने में किया जा सके। आवास निर्माण सस्ता हो, इसके लिए स्थानीय सामान का बेहतर तरीके से इस्तेमाल करें जैसे कि बांस, मिट्टी, छप्पर आदि। मनमाफिक मांस उप्पादन के लिए बेहतर प्रबंधन पर जोर दें और इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखें।

ब्रायलर ब्रीड का चयन- अच्छी गुणवत्ता वाले एक दिन के चूजें का चुनाव करना चाहिये।

चूजे के घर पहुँचने के पहले की तैयारी- पहले से इस्तेमाल किये जा रहे बिछावन को हटा दें और दूसरे सामान की अच्छी तरह सफाई करें पालकी और पूरे *पोल्ट्री* घर में *सेनिटाइजर* का छिड़काव करें अच्छी किस्म के कीटाणुनाशक का छिड़काव करें। पानी की पाइप की अच्छी तरह सफाई करें अच्छे एजेंट की मदद से *पोल्ट्री हाउस* में धुआ कराएं पहले सप्ताह चूजें की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखें।

वेंटिलेशन- आवास या शेड में पर्याप्त हवा आ सके इसके लिए *क्रास वेंटिलेशन* की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए।

प्रकाश- पहले दिन से लेकर चिकन के बड़ा होने तक हर दिन 24 घंटे बिजली की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए।

ब्रॉयलर पालन में डीप लीटर प्रबंधन- शेड के भीतर चूजे की लीटर में धान की भूसी, लकड़ी का बुरादा और गेहूँ की भूसी आदि का इंतजाम हो। पुराने और नये चूजें के लिए पुराने लीटर को हटाकर साफ-सुथरी लीटर का इंतजाम करना। ज्यादा नमी से लीटर में होने वाले कड़ापन से बचाने की कोशिश करने के लिए उसे नियमित अंतराल पर हिलाते-डुलाते रहना चाहिए। शेड के भीतर नमी की मात्रा को संतुलित रखने की कोशिश करनी चाहिए।

चिकन के लिए चारा का प्रबंधन- मुर्गी पालन में चारा प्रबंधन बेहद अहम कड़ी है और साथ ही सबसे अधिक खर्च इसी मद में होता है जो उत्पादन को काफी प्रभावित करता है। व्यवसायिक मुर्गी पालन में अच्छे परिणाम के लिए चारा और चारे का कुशल प्रबंधन बेहद जरूरी है। वहीं पर जब इस मद में कमी रह गयी तो चूजों को कई बीमारियाँ लग जाती हैं जिससे उत्पादन बुरी तरह प्रभावित होता है। यहाँ पर ध्यान देना बेहद जरूरी हो जाता है कि जो चारा हम मुहैया करा रहे है उसमें सभी जरूरी पोषक तत्व यानी कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, मिनरल एवं विटामिन्स भी शामिल हों। नियमित पोषक तत्वों के अलावा अलग से कुछ और बेहतर पोषक तत्व देने की जरूरत है जिससे खाना ठीक से पच सके और साथ ही उनका जल्दी से विकास हो सके।

ब्रॉयलर फीड या चारे के प्रकार

चूजे की उम्र	फीड या चारे की किस्म
0–10 दिन	*प्री स्टार्टर*
11–21 दिन	*स्टार्टर*
22 दिन से ऊपर	*फिनिशर*

ब्रॉयलर का दाना

दाना मिश्रण प्रतिशत में				
अवयव	**1**	**2**	**3**	**4**
अनाज दलिया (मकई, गेहूँ, बाजरा, ज्वार, महुआ आदि)	56	52	57	55
मूँगफली की खली	20	25	15	20
चोकर चावल का कना, चावल *ब्रान* आदि	10	11	18	15
मछली का चूरा	12	10	8	8
हड्डी का चूरा	2.5	2.5	2.5	2.5
लवण मिश्रण	1.5	1.5	1.5	1.5
साधारण नमक	0.5	0.5	0.5	0.5
दाना मिश्रण सं. 1 एवं 2 को छः सप्ताह तक एवं उसके बाद 3 एवं 4 नं. खिलायें। प्रति 100 किग्रा दाना मिश्रण में *विटामिन सप्लीमेंट* 25 ग्राम खिलायें।				

ब्रॉयलर फार्मिंग में चारे की अनुमानित खपत

चूजे की उम्र (दिनों में)	चारे की मात्रा (ग्राम में)	शरीर का वजन ग्रहण करना (प्रति दिन के हिसाब से)
पहला दिन	20 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	45–55 ग्राम
दूसरा दिन	22 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	55–95 ग्राम
तीसरा दिन	24 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	95–135 ग्राम
चौथा दिन	26 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	135–175 ग्राम
पांचवां दिन	28 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	175–215 ग्राम
छठा दिन	30 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	215–255 ग्राम
सातवां दिन	32 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	255–295 ग्राम
आठवां दिन	34 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	295–335 ग्राम

चूजे की उम्र (दिनों में)	चारे की मात्रा (ग्राम में)	शरीर का वजन ग्रहण करना (प्रति दिन के हिसाब से)
नवां दिन	36 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	335–385 ग्राम
दसवां दिन	38 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	385–425 ग्राम
ग्यारहवां दिन	40 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	425–465 ग्राम
बारहवां दिन	42 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	465–505 ग्राम
तेरहवां दिन	44 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	505–545 ग्राम
चौदहवां दिन	46 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	545–585 ग्राम
पन्द्रहवां दिन	48 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	585–625 ग्राम
सोलहवां दिन	50 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	625–665 ग्राम
सत्रहवां दिन	52 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	665–705 ग्राम
अठारहवां दिन	54 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	705–745 ग्राम
उन्नीसवां दिन	54 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	745–785 ग्राम
बीसवां दिन	56 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	785–825 ग्राम
इक्कीसवां दिन	58 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	825–865 ग्राम
बाइसवां दिन	60 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	865–905 ग्राम
तेइसवां दिन	62 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	905–945 ग्राम
चौबीसवां दिन	64 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	945–985 ग्राम
पच्चीसवां दिन	66 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	985–1025 ग्राम
छब्बीसवां दिन	68 ग्राम प्रति चूजा प्रति दिन	1025–1045 ग्राम

मुर्गी पालन का अनुमानित आय एवं व्यय (₹)

विवरण	100 चूजे	200 चूजे	500 चूजे
अनावर्तक व्यय			
1. भूमि स्वयं की होगी	–	–	–
2. आवास 1.5 वर्ग फुट/पक्षी, दर ₹ 100/वर्ग फुट	15,000	30,000	75,000
3. उपकरण ₹ 10/– प्रति पक्षी	1000	2000	5000
योग	16000	32000	80000

आवर्तक व्यय

1. एक दिवसीय चूजे, दर ₹ 23/– प्रति चूजा 3 प्रतिशत अतिरिक्त मृत्यु दर के साथ	2369	4738	11845
2. आहार 3.00 कि.ग्रा./पक्षी, दर ₹ 20/– प्रति किग्रा	6000	12000	30000
3. विविध व्यय ₹ 6/– पक्षी	600	1200	2400
4. अन्य व्यय/ ₹			
एक बैच पर खर्च	9269	18538	46345
सात बैच पर खर्च	64883	129766	324415

योजना की लागत

1. अनावर्तक व्यय	16000	32000	80000
2. बैच पर आवर्तक व्यय	18538	37076	92690

वार्षिक आय विवरण

एक बैच की बिक्री से आय भार 1.5 कि.ग्रा. प्रति ब्रायलर दर ₹ 100/– कि.ग्रा. (एक बैच से)	15000	30000	75000
खाली बोरे से आय	500	1000	2500
एक बैच से आय	20000	31000	77500
सात बैच से आय	140000	217000	542500
वार्षिक आय	75117	87234	218085

बकरी पालन

बकरी पालन प्रायः सभी जलवायु में कम लागत, साधारण आवास, सामान्य रख-रखाव तथा पालन-पोषण के साथ संभव है। इसके उत्पाद की बिक्री हेतु बाजार सर्वत्र उपलब्ध है। इन्हीं कारणों से पशुधन में बकरी का एक विशेष स्थान है।

उपरोक्त गुणों के आधार पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी बकरी को 'गरीब की गाय' कहा करते थे। आज के परिवेश में भी यह कथन महत्वपूर्ण है। आज जब एक ओर पशुओं के चारे-दाने एवं दवाई महँगी होने से पशुपालन आर्थिक दृष्टि से कम लाभकारी हो रहा है वहीं बकरी पालन कम लागत एवं सामान्य देख-रेख में गरीब किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के जीविकोपार्जन का एक साधन बन रहा है। इतना ही नहीं, इससे होने वाली आय समाज के आर्थिक रूप से सम्पन्न लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। बकरी पालन स्वरोजगार का एक प्रबल साधन बन रहा है।

बकरी पालन की उपयोगिता

बकरी पालन मुख्य रूप से मांस, दूध एवं ऊन (बाल) (पसमीना एवं मोहेर) के लिए किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश राज्य के लिए बकरी पालन मुख्य रूप से मांस उत्पादन हेतु एक अच्छा व्यवसाय का रूप ले सकता है। इस क्षेत्र में पायी जाने वाली बकरियाँ अल्प आयु में वयस्क होकर दो वर्ष में कम से कम 2 बार बच्चों को जन्म देती हैं और एक ब्याव में 2-3 बच्चों को जन्म देती हैं। बकरियों से मांस, दूध, खाल एवं ऊन के अतिरिक्त, इसके मल-मूत्र से जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। बकरियाँ प्रायः चारागाह पर निर्भर रहती हैं। यह झाड़ियाँ, जंगली घास तथा पेड़ के पत्तों को खाकर हम लोगों के लिए पौष्टिक आहार जैसे मांस एवं दूध उत्पादित करती हैं।

परिचय

बकरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और इससे प्राप्त होने वाली वस्तुएं, दूध, बाल, चमड़े जैविक खाद इत्यादि सभी प्रकार से लाभदायक है। इसके पालन-पोषण में थोड़ी सावधानी एवं जानकारी से अधिक लाभ मिलता है।

प्रजनन

अच्छी नस्ल की मांस वाली या दूध वाली या दोनों प्रकार की बकरी देशी या संकर का चुनाव करें।

बकरी गर्म होने पर देशी या संकर नस्ल से पाल दिलवाएं। इसकी सुविधा चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर में उपलब्ध है।

पाल दिलाने का उचित समय

गर्म होने के 20-30 घंटे के अंदर ही प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से गर्भाधान कराएँ।

बच्चा पैदा होने का उचित समय

लगभग 145-150 दिनों के गर्भाधान के बाद बच्चों का जन्म होता है। अतः पाल दिलाते समय यह ध्यान देना चाहिए कि बच्चे अधिक जाड़े या गर्मी के मौसम में पैदा नहीं हों।

गाभिन बकरी की देखभाल

बकरियों को सुबह 8 बजे से 11 बजे तथा शाम 3 बजे से 5 बजे तक चराना चाहिए। दोपहर के समय में अधिक धूप-गर्मी से बचाना चाहिए। सुबह या शाम को 200-250 ग्राम दाना प्रति बकरी देना चाहिए।

पीने का स्वच्छ जल पूरी मात्रा में मिलना चाहिए।

रख-रखाव तथा बीमारियों से बचाव

छोटे बच्चों को जन्म के बाद से ही खीस देते रहना चाहिए। इसमें पोषण के अलावा, रोग निरोधक शक्ति भी है। छोटे बच्चों को ठंडक से बचाना चाहिए।

समय-समय पर परजीवी से बचाव के लिए दवा पिलानी चाहिए। समय-समय पर मल जांच कराकर उचित कृमिनाशक दवाई दें। आवश्यकता पड़ने पर पशुचिकित्सक से सलाह लें।

बकरी का दूध

यह दूध अति सुपाच्य है और मनुष्य के छोटे बच्चों के लिए अत्यधिक लाभकारी है। इसके सूक्ष्म पोषक तत्व जल्दी ही पच जाते हैं। इसमें शरीर पोषण की अधिक क्षमता है, जो माता के दूध के समतुल्य है तथा इसमें रोग-निरोधक गुण भी मौजूद हैं।

बकरी पालन से संबंधित आवश्यक बातें

बकरी पालकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :

- ब्लैक बंगाल बकरी का प्रजनन बीटल या सिरोही नस्ल के बकरों से कराएं।
- पाठी का प्रथम प्रजनन 8-10 माह की उम्र के बाद ही कराएं।
- बीटल या सिरोही नस्ल से उत्पन्न संकर पाठी या बकरी का प्रजनन संकर बकरे से कराएं।
- बकरा और बकरी के बीच नजदीकी संबंध नहीं होनी चाहिए।
- बकरा और बकरी को अलग-अलग रखना चाहिए।
- पाठी अथवा बकरियों को गर्म होने के 10-12 एवं 24-26 घंटों के बीच दो बार पाल दिलावें।
- बच्चा देने के 30 दिनों के बाद ही गर्म होने पर पाल दिलावें।
- गाभिन बकरियों को गर्भावस्था के अन्तिम डेढ़ महीने में चराने के अतिरिक्त, कम से कम 200 ग्राम दाना का मिश्रण अवश्य दें।
- बकरियों के आवास में प्रति बकरी 10-12 वर्ग फीट की जगह दें तथा एक घर में एक साथ 20 बकरियों से ज्यादा नहीं रखें।
- बच्चा जन्म के समय बकरियों को साफ-सुथरी जगह पर पुआल आदि पर रखें।

- बच्चा जन्म के समय अगर मदद की आवश्यकता हो तो साबुन से हाथ धोकर मदद करना चाहिए।
- जन्म के उपरान्त नाभि को 3 इंच नीचे से नया ब्लेड से काट दें तथा डिटोल या टिन्चर आयोडिन या वोकांडिन लगा दें। यह दवा 2-3 दिनों तक लगाएं।
- बकरी खास कर इनके बच्चों को ठंड से बचाएं।
- बच्चों को माँ के साथ रखें तथा रात में माँ से अलग कर टोकरी से ढक कर रखें।
- नर बच्चों का बंध्याकरण 2 माह की उम्र में करावें।
- बकरी के आवास को साफ-सुथरा एवं हवादार रखें।
- अगर संभव हो तो घर के अन्दर मचान पर बकरी तथा बकरी के बच्चों को रखें।
- बकरी के बच्चों को समय-समय पर टेट्रासाइक्लिन दवा पानी में मिलाकर पिलाएं जिससे न्यूमोनिया का प्रकोप कम होगा।
- बकरी के बच्चों को कोकसोडिओसीस के प्रकोप से बचाने की दवा डॉक्टर की सलाह से दें।
- तीन माह से अधिक उम्र के प्रत्येक बच्चों एवं बकरियों को इन्टेरोटोक्सिमिया का टीका अवश्य लगवाएं।
- बकरी तथा इनके बच्चों को नियमित रूप से कृमिनाशक दवा दें।
- बकरियों को नियमित रूप से खुजली से बचाव के लिए ब्यूटाक्स से स्नान करावें तथा आवास में ब्यूटाक्स का छिड़काव करें।
- बीमार बकरी का उपचार डॉक्टर की सलाह लेकर ही करें।
- नर का वजन 15 किलोग्राम होने पर मांस हेतु व्यवहार में लायें।
- खस्सी और पाठी की बिक्री 9-10 माह की उम्र में करना लाभप्रद है।

आईआईपीआर लघु दाल मिल

उपयोगिता : विभिन्न दलहनों से दाल बनाने हेतु

प्रकार : रबर-स्टील डिस्क टाइप दाल चक्की

अतिरिक्त सुविधा : एमरी रोलर (पिटिंग हेतु), साइक्लोन एवं ग्रेडर

ऊर्जा स्रोत : 2 अ.श., 220 वोल्ट, एकल फेज मोटर चलित

क्षमता : 75-125 कि.ग्रा./घंटा

मूल्य : ₹ 95,668/- मात्र (एक्स-वर्क्स) पैकिंग, परिवहन व प्रदर्शन शुल्क अतिरिक्त, विभिन्न दलहनों के लिए जालियों का मूल्य ₹ 3,000/- प्रति सेट।

दाल बनाने की विधि

1. सर्वप्रथम दलहन को ग्रेडर की सहायता से साफ व वर्गीकृत कर लें।
2. ग्रेड किये दानों को एमरी रोलर से पास करें।
3. छिलकों पर खरोंच आये दानों को पानी में भिगोएं। विभिन्न दलहनों के लिए भिगोने का समय भिन्न-भिन्न होता है।
4. अरहर के लिए व्यवसायिक स्तर पर प्रचलित तेल एवं पानी उपचार का प्रयोग भी कर सकते हैं।
5. उपचारित दानों को धूप में लगभग 10 प्रतिशत तेल एवं पानी उपचार का प्रयोग भी कर सकते हैं।

6. इस प्रकार उपचारित दानों को रबर-स्टील डिस्क संयोजन वाली मिलिंग इकाई के बीच डाल कर दर लिया जाता है।

7. विभिन्न दलहनों के आकर के अनुसार रबर-स्टील डिस्क के बीच उचित दूरी समायोजित कर ली जाती है।

8. अधिक दाल प्राप्ति और कम टूटन प्राप्त करने के लिए डिस्कों के मध्य दूरी का समायोजन अत्यावश्यक है।

9. साइक्लोन सेपरेटर की सहायता से भून्सी-चूनी को पृथक कर साफ दाल प्राप्त की जाती है।

10. मिलिंग से प्राप्त उत्पाद को ग्रेडर की सहायता से वर्गीकृत किया जा सकता है।

विशेषता : रबर डिस्क के स्थान पर स्टील डिस्क का प्रयोग करके इस मिल से दलिया भी बनाया जा सकता है।

प्राप्ति स्थान : मे. भारत हैवी मशीन्स, जी-20, बजरंगी इंडस्ट्रियल एस्टेट, साइट-4 पनकी, कानपुर-208012

फोन : 7678995757, 8939115497, 9336111261

ई-मेल : bhmgroup@gmail.com

जून, 2018

जुलाई, 2018

अगस्त, 2018

सितम्बर, 2018

अक्टूबर, 2018

नवम्बर, 2018

दिसम्बर, 2018

जनवरी, 2019

फरवरी, 2019

मार्च, 2019

अप्रैल, 2019

मई, 2019

जून, 2019

जुलाई, 2019

अगस्त, 2019

सितम्बर, 2019

अक्टूबर, 2019

नवम्बर, 2019

दिसम्बर, 2019

जनवरी, 2020

महत्वपूर्ण दूरभाष नम्बर

क्र. सं	संस्थान का नाम	दूरभाष नम्बर
1.	निदेशक, भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर	91–512–2580986
2.	डा. राजेश कुमार, प्रधान अन्वेषक, प्रधान वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष (प्र.) सामाजिक विज्ञान विभाग, भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर	8004279079 7905381239
3.	श्री विजय विश्वास पंत, जिलाधिकारी, कानपुर नगर	9454417518
4.	श्री शिव प्रसाद आनन्द, मुख्य विकास अधिकारी	9454464564
5.	श्री विनोद कुमार, सहायक पुलिस अधीक्षक	9454401045
6.	श्री रमेश चन्द्रा, जिला विकास अधिकारी	9454464558
7.	श्रीमती ऊषा श्रीवास्तव, ख.वि.अ., देवमई	05181–271083
8.	श्री अनिल कुमार पाठक, उप निदेशक, कृषि प्रसार	05181–229263
9.	श्री अमर सिंह, जिला कृषि अधिकारी	9235629458, 9453406249
10.	श्री अनीश कुमार, जिला उद्यान अधिकारी	9450075291
11.	श्री वी.के. पाण्डेय, मुख्य चिकित्सक अधिकारी	9838775740
12.	श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी	9450702596
13.	भाकृअनुप–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ	0522–2841022, 23 0522–2841027
14.	किसान कॉल सेंटर, भाकृअनुप–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ	180018015151
15.	मीडिया संसाधन केन्द्र, फोन द्वारा संपर्क, भाकृअनुप–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ	0522–2841082
16.	भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ	0522–2480726
17.	भाकृअनुप–केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, लखनऊ	0522–2464664
18.	राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ	0522–2205848
19.	केन्द्रीय औषधि एवं सुगंध पौध संस्थान, लखनऊ	0522–2359623
20.	राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, लखनऊ	0522–2202420
21.	राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, लखनऊ	0522–2304530
22.	उत्तर प्रदेश मंडी परिषद, लखनऊ	0522–2720381 / 82
23.	कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहपुर	05180–242214
24.	प्रमुख सचिव (खाद्य प्रसंस्करण विभाग)	0522–2237182 / 2214740

क्र. सं	संस्थान का नाम	दूरभाष नम्बर
25.	प्रमुख सचिव (कृषि विभाग)	8400497777 / 0522–2237617 / 2213443
26.	प्रमुख सचिव (कृषि विपणन एवं विदेश व्यापार विभाग)	0522–2237617 / 2213441
27.	प्रमुख सचिव (ग्राम विकास विभाग)	0522–2238102, 2213184
28.	प्रमुख सचिव (दुग्ध विकास विभाग, पशुधन)	0522–2237965, 2213402
29.	प्रमुख सचिव (परती भूमि विकास विभाग)	0522–2214775 / 2238461
30.	अपर मुख्य सचिव (युवा कल्याण विभाग)	0522–2239768 / 22135522
31.	प्रमुख सचिव (लघु सिंचाई विभाग)	0522–2237065 / 2213435
32.	उपनिदेशक (पौध रक्षा)	9415163064
33.	उपनिदेशक (कृषि प्रसार)	9415480321
34.	उपनिदेशक (खाद्य प्रसंस्करण)	9415011688

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 6565333